आर्य्य भाषा पाठावली

द्वितीय भाग

गुरुकुल-मुख्याधिष्ठाता श्री महात्मा मुन्शीरामजी

की आज्ञानुसार

हल्दौर जिला बिजनौर निवासी

श्री लाला भवानीप्रसादजी गुप्त

से

निर्मित और संगृहीत

पं० अनन्तराम शर्म्मा

के प्रबन्ध से

गुरुकुलस्थ सद्धर्म्मप्रचारक यन्त्रालय में

मुद्रित

सम्वत् १९६६

प्रथमावृत्ति १००० } { मूल्य ।)

* ओ३म् *

भूमिका ।

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि अन्य बीसियों हिन्दी पाठाव-लियों की विद्यमानता में इस नवीन " आर्यभाषा पाठावली " के लिखे जाने की क्या आवश्यकता थी ; क्या उनसे गुरुकुल में आर्यभाषा सिखलाने का काम नहीं लिया जासक्ता था ? इस के उत्तर में निवेदन है कि निम्न लिखित भाव इसके ग्रन्थन के प्रेरक हुए हैं ।

(१) सम्प्रति इस प्रान्त के सरकारी शिक्षा-विभाग में प्रचलित पाठावलिऐं ऐसी भाषा में लिखी गई हैं, कि उसको न तो उर्दू ही कह सक्ते हैं और न वह हिन्दी वा आर्य भाषा ही कही जासक्ती है। उस भाषा में संस्कृत शब्दों का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया गया है और इस सिद्धान्त की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया कि बिना किसी प्राचीन भाषा (Classical language) की सहायता के किसी प्रचलित भाषा (Vernaculer) का निर्वाह नहीं हो सक्ता ; कुल प्रचलित भाषाओं की जीवनदात्री प्राचीन भाषाऐं ही होती हैं । जो २ प्रचलित भाषाऐं उन्नत, परिमार्जित और परिष्कृत बनी है, उन्हों ने किसी प्राचीन भाषा के शब्दों

वा रूपान्तरों को लेकर ही अपनी श्रीवृद्धि की है; वर्तमान अंग्रेजी और बङ्गभाषा इस के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यदि अंग्रेजी में से ग्रीक और लेटन के शब्दों और रूपान्तरों को निकाल देवें वा बङ्ग-भाषा में से संस्कृत शब्दों को बाहर कर दिया जाय तो अंग्रेजी और बङ्गभाषा की जो दुर्दशा होगी, उसको विद्वान् स्वयं विचार सकते हैं; इस का दुष्परिणाम यही निकलेगा, कि जहाँ अब एक पारिभाषिक वा संज्ञावाचक शब्द से काम निकल जाता है, वहाँ उसके स्थान में वाक्य के वाक्य प्रयोग में लाने पड़ेंगे और इस से वह भाषा बिल्कुल भद्दी बन जायगी। आर्य भाषा से संस्कृत शब्दों के बहिष्कार-वादी स्वपक्ष की पुष्टि में यह हेतु देते हैं कि संस्कृत शब्दों के समावेश से आर्य भाषा क्लिष्ट बन जाती है और उसके प्रचार में बाधा पड़ती है, परन्तु वे चित्र को एक ही ओर से देखते हैं और इस बात को नितान्त भुला देते हैं कि जन-साधारण की बोलचाल की भाषा और लिखित (Litorary) भाषा सदैव भिन्न रही हैं और लिखित भाषा निरक्षरों को कठिन ही प्रतीत हुआ करती है, और वह बिना पढ़े उनको कभी नहीं आसक्ती। जहाँ संस्कृत के पक्षपाती एक अति पर जाते हैं और आर्य भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार करके उसे क्लिष्ट बना देते हैं, वहाँ दूसरे पक्ष वाले दूसरी अति पर चले जाते हैं और आर्य भाषा को बिल्कुल ग्रामीण भाषा

* ओ३म् *

भूमिका ।

स्वभावतः प्रश्न उठता है कि अन्य बीसियों हिन्दी पाठावलियों की विद्यमानता में इस नवीन "आर्यभाषा पाठावली" के लिखे जाने की क्या आवश्यकता थी ; क्या उनसे गुरुकुल में आर्यभाषा सिखलाने का काम नहीं लिया जासक्ता था ? इस के उत्तर में निवेदन है कि निम्न लिखित भाव इसके ग्रन्थन के प्रेरक हुए हैं ।

(१) सम्प्रति इस प्रान्त के सरकारी शिक्षा-विभाग में प्रचलित पाठावलिऐं ऐसी भाषा में लिखी गई हैं, कि उसको न तो उर्दू ही कह सक्ते हैं और न वह हिन्दी वा आर्य भाषा ही कही जासक्ती है। उस भाषा में संस्कृत शब्दों का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया गया है और इस सिद्धान्त की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया गया कि बिना किसी प्राचीन भाषा (Classical language) की सहायता के किसी प्रचलित भाषा (Vernaculer) का निर्वाह नहीं हो सक्ता ; कुल प्रचलित भाषाओं की जीवनदात्री प्राचीन भाषाऐं ही होती हैं। जो २ प्रचलित भाषाऐं उन्नत, परिमार्जित और परिष्कृत बनी है, उन्हों ने किसी प्राचीन भाषा के शब्दों

वा रूपान्तरों को लेकर ही अपनी श्रीवृद्धि की है; वर्तमान अंग्रेजी और बङ्गभाषा इस के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। यदि अंग्रेजी में से ग्रीक और लेटन के शब्दों और रूपान्तरों को निकाल देवें वा बङ्ग-भाषा में से संस्कृत शब्दों को बाहर कर दिया जाय तो अंग्रेजी और बङ्गभाषा की जो दुर्दशा होगी, उसको विद्वान् स्वयं विचार सकते हैं; इस का दुष्परिणाम यही निकलेगा, कि जहाँ अब एक पारिभाषिक वा संज्ञावाचक शब्द से काम निकल जाता है, वहाँ उसके स्थान में वाक्य के वाक्य प्रयोग में लाने पड़ेंगे और इस से वह भाषा बिलकुल भद्दी बन जायगी। आर्य भाषा से संस्कृत शब्दों के बहिष्कार-वादी स्वपक्ष की पुष्टि में यह हेतु देते हैं कि संस्कृत शब्दों के समावेश से आर्य भाषा क्लिष्ट बन जाती है और उसके प्रचार में बाधा पड़ती है, परन्तु वे चित्र को एक ही ओर से देखते हैं और इस बात को नितान्त भुला देते हैं कि जन-साधारण की बोलचाल की भाषा और लिखित (Literary) भाषा सदैव भिन्न रही हैं और लिखित भाषा निरक्षरों को कठिन ही प्रतीत हुआ करती है, और वह बिना पढ़े उनको कभी नहीं आसक्ती। जहाँ संस्कृत के पक्षपाती एक अति पर जाते हैं और आर्य भाषा में संस्कृत शब्दों की भरमार करके उसे क्लिष्ट बना देते हैं, वहाँ दूसरे पक्ष वाले दूसरी अति पर चले जाते हैं और आर्य भाषा को बिल्कुल ग्रामीण भाषा

बना देना चाहते हैं। वे पारिभाषिक शब्दों को भी, जो सब प्रचलित भाषाओं में प्राचीन भाषाओं (Classical languages) से ही लिये जाते हैं, संस्कृत जैसी परिपूर्ण और प्रत्येक भाव-प्रदर्शन में समर्थ भाषा से नहीं लेना चाहते और आर्य भाषा को एक नीरस और साहित्य के गुणों से रहित भाषा बना देने का प्रयत्न करते हैं। इस का परिणाम यह निकला है कि उन पाठा-वलियों को पढ़कर भाषा की अन्तिम परीक्षा (Hindi Vernac-(uler Final Examination) में उत्तीर्ण विद्यार्थियों में आज कल के समाचार और सामयिक पत्रों में प्रचलित भाषा को भी भली भांति समझने की योग्यता नहीं होती। अतएव एक ऐसी आर्य्य-भाषा पाठावली की आवश्यकता है कि जिस को पढ़ कर, जहाँ बालकों को परिमार्जित, शुद्ध और सरल आर्य्य-भाषा को समझने की और लिखने की योग्यता प्राप्त हो, वहाँ उन में बाल्यावस्था से ही साहित्य रुचि भी शनैः २ उत्पन्न होती जाय।

(२) अद्यावधि, पाठावलियों में जो कविताएं रक्खी गई है, वे सब पुरानी अप्रचलित [Obsolete] भाषा की ही हैं। वस्तुतः यह एक आक्षेप की बात है कि हमारी आर्य्य भाषा का गद्य और भाषा में है और पद्य एक अन्य ही भाषा में है। इस से मेरा तात्पर्य पुरानी हिन्दी [ब्रज भाषा आदि] के धन्य मान्य

तुलसी सूर आदि महा-कवियों की कविताओं के महत्व घटाने का नहीं है; उन के ग्रन्थ आर्य्य भाषा के लिए सदैव गौरव-स्वरूप रहेंगे और मैं ने भी आगे चल इस मालिका के तृतीय भाग को तुलसीकृत रामायण की मनोहारिणी और शिक्षा-मयी कविता से अलंकृत करने का उद्योग किया है; किन्तु मेरा अभिप्राय केवल यह है कि जो प्रचलित भाषा कविता से शून्य है, वह अङ्ग-हीन ही कहलाती है; क्योंकि भाषा में जीवन डालने वाली सुकवियों की कविता ही होती है। हर्ष का विषय है कि इस न्यूनता को सरस्वती आदि में लिखने वाले कतिपय सुकवियों ने दूर करने का उपक्रम कर दिया है, किन्तु अभी तक बालकों के पढ़ाने योग्य सरल कविताएँ न्यून ही बनी हैं और जो बनी हैं उनको बालकों की पाठ्य-पुस्तकों में रखकर उन से लाभ नहीं उठाया गया। पुरानी भाषा की कविताऐं प्रचलित-भाषा में लब्ध-प्रवेश प्रौढ विद्यार्थियों को तो लाभप्रद और आनन्द-दायक हो सकती हैं किन्तु अल्पवयस्क प्रारम्भिक विद्यार्थी न तो उन में कुछ रसास्वादन ही कर सकते हैं और न वे भाषा ज्ञान में उन से कुछ अधिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्युत प्रथम ही एक नवीन भाषा पढ़ाने से उन की मानसिक शक्तियों पर एक बोझ सा पड़ता है। अंग्रेजी आदि अन्य भाषाओं की पढ़ाई में भी ऐसा ही नियम देखा जाता है कि शेक्सपियर आदि [Shakespeare] के पुरानी भाषा

के काव्य उच्च श्रेणियों में ही पढ़ाये जाते हैं और निम्न श्रेणियों में सरल प्रचलित भाषा की कविताएँ ही पढ़ाई जाती हैं। इस लिए इस मालिका की प्रथम दोनों पाठावलियों में तो केवल प्रचलित खड़ी बोली के पद्य रक्खे गये हैं और तीसरी पाठावली मे लेकर आगे २ पुरानी भाषा की कविताओं का भी समावेश किया गया है। खड़ी बोली की कविताओं के लिए संग्रहीता सुप्रसिद्ध सरस्वती पत्रिका प्रयाग और उस के कृतविद्य सम्पादक का अनुगृहीत और ऋणी है, क्यों कि खड़ी बोली की अधिकाँश कविताएँ उसी पत्रिका से संग्रह की गई हैं।

३—इस समय अन्य प्रान्तों में जो और २ भाषा पाठावलियाँ विद्यमान् है, उन में कई की भाषा तो ऐसी बेढंगी, अशुद्ध और स्थानिक ग्रामीण शब्दों से पूर्ण है कि उनको बालकों को पढ़ाने से उनकी भाषा में भी वे दोष आजाने सम्भव है; कई पाठावलियों के सब भागों में एक सी ही वाक्य रचना रक्खी गई है अर्थात् उनकी भाषा आनुक्रमिक [Graduated] नहीं है। कई पाठावलियों में वस्तु वर्णनात्मिक पाठ [Object lessons] लगातार रक्खे गये हैं; उनको पढ़ते २ बालकों का जी उकता जाताहै; उनमें कथाओं को, कि जिन से बालक सुगमता से सुशिक्षा ग्रहण कर सकते हैं, बीच बीच में स्थान नहीं दिया गया; न मध्य मध्य में बालकों का मनोरञ्जन करने वाली कविताएँ ही रक्खी गई हैं। जो पुरानी भाषा की कविताएँ

दी भी गई हैं, वे पुस्तक के अन्त में एकत्र रख दी गई हैं, जिस से बालकों को एक विषय के पाठों का एक मानसिक अजीर्ण सा हो जाता है। इस आर्य्य भाषा पाठावली में इन त्रुटियों को दूर करने का यथाशक्य प्रयत्न किया गया है। इस पाठावली मालिका का मुख्य उद्देश्य तो, जैसा कि ऊपर कहा गया है, विद्यार्थियों में आर्य्य-भाषा साहित्य का अनुराग और उस में उन की गति उत्पन्न करना है; किन्तु इस के ग्रन्थन में निम्न लिखित बातों को भी विशेषतः लक्ष्य में रक्खा गया है—

(१) इस की भाषा शुद्ध, सरल, प्रचलित आर्य्य भाषा रक्खी गई है, किन्तु पारिभाषिक और संज्ञा-बाचक शब्द संस्कृत के ही प्रयोग किये हैं; इस से इस भाषा में किन्हीं को कदाचित् यत्किञ्चित् कठिनता का भ्रम हो तो आश्चर्य्य नहीं, किन्तु यदि आदि से ही बालकों को बोल चाल तथा पाठों में इन शब्दों का अभ्यास कराया जायगा तो वे कदापि क्लिष्ट प्रतीत न होंगे और नित्य प्रति की बोल चाल की भाषा के शब्द बन जायंगे। यथा—दूध पिलाने वाले पशुओं को **स्तन-पायी**, दो खुर वालों को **द्विशफ**, जुगाली को **रोमन्थ**, पक्षियों को **अंडज** तथा रेंगने वालों को **कृमी** कहने लगें तो कोई कठिनता भान न होगी। अंग्रेज़ी आदि में भी इसी प्रकार लेटन आदि के शब्द प्रयुक्त होने लगे हैं और दूर क्यों जायँ, हमारी उर्दू में इसी प्रकार फ़ारसी के

सैंकड़ों शब्द प्रयुक्त होते हैं और उन को कोई भी क्लिष्ट नहीं बतलाता।

(२) इस में प्रथम भाग से लेकर उत्तरोत्तर तारतम्य वा उतार चढ़ाव की भाषा रक्खी गई है अर्थात् प्रथम भाग से द्वितीय में और द्वितीय से तृतीय में, इसी प्रकार आगे २ शब्द, अर्थ और विषय की गम्भीरता वा कठिनता बढ़ाई गई है।

(५) इस में ५ प्रकार के पाठ रक्खे गये हैं--**वर्णनात्मिक**[1] **कथा**[2] **धर्म्म और आचार शिक्षा**[3], **कविता**[4] और **स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धि**[5]।

क—**वर्णनात्मिक** पाठों में क्रम विवक्षित है। प्रथम भाग में **ग्राम्य** वा **गृह्य** पशुओं के वर्णन रक्खे गये हैं; तत्पश्चात् आगे अपरिचित जन्तुओं और बस्तुओं के वर्णनों को स्थान दिया गया है। वर्णनात्मिक पाठों में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है कि विद्यार्थी को साधु और सरल भाषा में स्व अनुभूत किसी वस्तु का वर्णन करना आजाय।

ख—**कथाओं** में जन्तु नहीं बुलाए गये वा कोई ऐसी बात नहीं लिखी गई कि जिस से देश में पूर्व से फैले हुए मिथ्या विश्वास (Superstition) में बृद्धि हो, किन्तु उन में बालकों वा पुरुषों की ही कथाएँ अधिकतर लिखी गई है, जिस से कि बालकों के चित्त पर अधिक प्रभाव पड़े और वे उन से

सुगमतया और शीघ्रतया शिक्षा ग्रहण कर सकें । कथा-प्रसंग में ही कहीं २ महात्माओं और विख्यात पुरुषों की जीवनी भी दी गई हैं, जिन से बालकों के हृदय में बाल्यावस्था से ही इतिहास विद्या का अनुराग उत्पन्न करना अभिप्रेत है ।

धर्म्म और आचार शिक्षा सम्बन्धी पाठों में मत मतान्तरों की शिक्षा नहीं रक्खी गई, किन्तु सर्व-सम्मत सार्व-जनिक धर्म्म और आचार की शिक्षाएँ ही सरल शब्दों में देने का प्रयत्न किया गया है ।

घ—जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, गद्य और पद्य की भाषा एक रक्खी गई है अर्थात् अधिकाँश **कविताएं प्रचलित खड़ी बोली** की ही दी गई है, किन्तु आगे चल कर तृतीय भाग से पुरानी भाषा की कविताओं का भी समावेश किया गया है, जिस से कि भावी सन्तानें अपने प्राचीन कवियों के मनोरम काव्यों के आनन्द से वंचित न रहें ।

ङ—**स्वास्थ्य-रक्षा के पाठों** को इस लिए स्थान दिया गया है कि प्रत्येक मनुष्य को स्वस्थ रहने की परमावश्यकता है और बिना स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के ज्ञान के कोई भी स्वस्थ नहीं रह सकता । खेद का विषय है कि हमारे आज कल के बहुत से विद्वान् अन्य विद्याओं के प्रकाण्ड पण्डित होते हुए भी स्वस्थ्य-रक्षा की विद्या से अपरिचित ही रहते हैं । सम्प्रति जो रोगों की इतनी अधिकता

देखी जाती है उस का एक कारण स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों की अनभिज्ञता भी है अतएव स्वास्थ्य-रक्षा के नियमों के जानने की परमावश्यकता देख कर ये पाठ रक्खे गये हैं ।

इस पाठावली के संग्रह में मेरा जो लक्ष्य था, केवल वह मैंने ऊपर वर्णन किया है । उस में मुझ को कहाँ तक सफलता प्राप्त हुई है, यह दूसरा प्रश्न है । मेरा विचार है कि मैंने बहुत स्थानों पर ठोकरें खाई होंगी और मुझ से भाषा और अर्थ सम्बन्धी कई अशुद्धियाँ हुई होंगी । न ही इस कार्य्य सम्पादन के लिये मुझे अपनी योग्यता का अभिमान है, किन्तु अपने से योग्यतर कृतविद्यों की इस ओर प्रवृत्ति न देख कर और महामान्य महात्मा मुन्शीराम जी गुरुकुल मुख्याधिष्ठाता की आज्ञा को शिरोधार्य करके मैं ने इस कार्य्य में प्रवृत्त होने की चपलता की है और स्वसंकीर्ण योग्यता के अनुसार इस की पूर्त्ति में यत्किञ्चित उद्योग किया है । आशा है कि विद्वन्महाशय भी इस को इसी भाव से ग्रहण करेंगे और इस की वास्तविक त्रुटियों से भी मुझ को प्रेम-पूर्वक सूचित करेंगे कि आगामी संस्करण में—यदि उस का अवसर आया—उन को दूर कर दिया जाय ।

संग्रहीता

गुरुकुल भूमि—काँगड़ी
चैत्र शुक्ला पूर्णिमा सं० १९६६ वै०

आर्य्यभाषा पाठावली ।

द्वितीय भाग

* विषयसूची *

ओ३म्

आर्य्य भाषा पाठावली ।

द्वितीय भाग ।

पाठ १

ईश प्रार्थना ।

(१)

हे दीन पालक ! दयामय ! दुःख हारी !
हे हे महा-महिम ! मङ्गल-मूल-कारी !
हे प्रेम-मूर्त्ति ! परमेश्वर नाम-धारी !
थोड़ी विनीत विनती सुनिए हमारी ॥

(२)

आलस्य, मोह, मद, मत्सर में हमारे
जो ये मनुष्य सब डूब गये बिचारे ।
सो तो गये; न उन का अब आसरा है;
हे नाथ ! हाल उन का अति ही बुरा है ॥

(३)

जो ये, परन्तु सब बालक हैं दिखाते;
माता, पिता, गुरु जिन्हें श्रम से सिखाते ।

सन्मार्ग में तुम सदा उन को चलाओ;
ए हो दयामय ! दया इतनी दिखाओ ॥

(४)

हो सत्य बात हम को सब काल प्यारी;
हे दीन बन्धु ! अभिलाष यही हमारी ।
बोलैं न झूठ; उस से अति दूर भागें;
राखैं सुसङ्ग; खल सङ्गति में न लागें ॥

(५)

आलस्य, फूट, मदिरा, मद दोष सारे
छाये यहां सब कहीं टरते न टारे ।
हे भक्त वत्सल ! इन्हैं उन से बचाओ;
हस्तारविन्द इन के सिर पै लगाओ ॥

(६)

उद्योग और श्रम शिल्प कला सिखाओ,
व्यापार में मन सदा इन का लगाओ ।
विद्या, विवेक, धन, धान्य सभी बढ़ाओ;
आरोग्य और बलवान् इन्हैं बनाओ ॥

(७)

देखो ! यहां सकल बालक ये खड़े हैं,
छोटे अनेक, दस पांच कहीं बड़े हैं ।

हे हे दयालु; इन का कर थांभ लीजै;
कीजै कृपा; अब इन्हें मत छोड़ दीजै ॥

{ श्री० पं० महावीरप्रसाद जी द्विवेदी कृत
सरस्वती मासिक पत्रिका से }

पाठ २

मोर ।

१—मोर भारतवर्ष के सुन्दर और मनोहर पक्षियों में है । इस का रङ्ग बड़ा चित्र विचित्र होता है । सब से अधिक शोभा देने वाली इस की लम्बी और विस्तृत पूँछ है । वह बहुत से पंखों के समूह से बनी हुई है । प्रत्येक पंख पर विविध रंगों की एक गोल आकृति होती है । इस आकृति में बहुत से चन्द्र से बने रहते हैं । मोर जब चाहता है अपनी दुम को पंखे के समान फैला लेता है । जब वह नाचता है, तब उस की फैली हुई पूंछ विशेष शोभा देती है ।

२—मोर के सिर पर हरे परों की एक कलग़ी होती है जो राज-मुकुट के सदृश उस की सुन्दरता को दुगना कर देती है । उस की ग्रीवा सुराही के समान लम्बी और गोल होती है । उस की ग्रीवा और कमर के रूएँ का रंग काली, हरी और सुनहरी झलक लिये होता है । मोर के पांव उस के सारे शरीर की सुन्दरता के विपरीत भद्दे और कुरूप होते

हैं। मोरनी के सिर पर कलग़ी नहीं होती न उस की दुम ही वैसी लम्बी और सुन्दर होती है।

३—मोर दाने दुनके वा कीड़े मकोड़े खाकर निर्वाह करता है। वह सर्प को भी मार कर खा जाता है इसी लिये उस को संस्कृत में **अहि-मार** या **भुजङ्ग-भुक्** भी कहते हैं। जहां मोर अधिकता से होते हैं वहां सांप नहीं रहता। भारी शरीर होने के कारण मोर अधिक ऊँचा और वेग से नहीं उड़ सकता जब कभी वह उड़ता है तो एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ कर जा बैठता है, अधिक नहीं।

४—मोरनी अण्डे देती है। फिर उन अण्डों पर कई दिन तक बैठी रह कर उन को गरम करती है। यह 'अण्डे सेवना' कहलाती है। उस के शरीर की उष्णता से अण्डे फूट जाते हैं और उन में से बच्चे निकल आते हैं। सब पक्षियों के बच्चे अण्डों से ही उत्पन्न होते हैं और इस लिये सारे पक्षी अण्डज कहलाते हैं। उन के बच्चे अपने माता पिताओं के साथ दाने चुगते फिरते हैं वा जब वे बहुत छोटे होते हैं तो उन के माता पिता अपनी चंचुओं में चुग्गा लाकर उन की चोंच में देते रहते हैं, कोई अण्डज अपने बच्चों को दूध नहीं पिलाता क्योंकि उन के दूध होता ही नहीं।

९—मोर हरे भरे वृक्षों में रहते हैं। वर्षा-ऋतु में, जब चारों ओर हरियाली छा जाती है, वे बड़े प्रसन्न रहते हैं। जब मेघ गरजता है, वे भी आनन्द में भर कर उस के साथ कूक देते हैं। इसी लिये मोर का नाम संस्कृत में "**मेघनादानुलासी**"—अर्थात् मेघों का शब्द सुनकर बोलने और नाचने वाला भी है उस समय उन का शब्द बड़ा प्रिय लगता है। वस्तुतः मोर आदि सुन्दर पक्षियों से ही उद्यान और बन की शोभा है।

पाठ ३

सुद्युम्न राजा, शङ्ख और लिखित मुनि।

१—शङ्ख और लिखित नाम के दो भ्राता थे। वे दोनों बड़े तपस्वी और सदाचारी थे। 'बाहुदा' नदी के तट पर, उन के, अलग अलग बहुत ही रमणीय, फल और पुष्पों से शोभित और सुन्दर आश्रम थे।

२—एक दिन लिखित मुनि अपने भ्राता शङ्ख के आश्रम में उन से मिलने गये। शङ्ख उस समय अपने आश्रम से बाहर कहीं घूमने को गये हुए थे। लिखित मुनि अपने भ्राता के आश्रम में पहुँच कर, वहां वृक्षों पर लगे हुए पके फल तोड़ २ कर खाने लगे। इतने में शङ्ख मुनि भी बाहर

से भ्रमण कर के वहां आन पहुँचे । भ्राता को आया देख कर, लिखित मुनि ने उन के समीप जाकर नमस्ते कहा ।

३—शङ्ख ने भ्राता को फल खाते हुए देख कर उन से पूछा कि ये आप ने कहां पाए ? लिखित ने उत्तर दिया, कि ये स्वादिष्ट, मधुर और सुन्दर फल आप के ही आश्रम के वृक्षों से मैं ने तोड़ लिये हैं । शङ्ख ने अप्रसन्न होकर कहा, "भ्रातः! आप ने मेरी अनुपस्थिति में मेरी आज्ञा बिना इन फलों को लिया है; अतएव आप को चोरी का पाप लगा । यद्यपि फलों की कोई बात नहीं है, तथापि धर्म के अनुसार, इस पाप का फल भोग कर आप को इस से छुटकारा पाना चाहिये; इस लिये राजा के पास जाकर और अपना अपराध स्वीकार कर के उस से प्रार्थना करो कि महाराज! मुझ को आप चोर समझ कर न्याय के अनुसार चोरों का दण्ड दीजिये"

४—अपने भ्राता की आज्ञानुसार लिखित मुनि राजा सुद्युम्न के पास गये । राजा ने उन का बड़ा आदर सत्कार किया और आने का कारण पूछा । लिखित ने कहा, महाराज! मैंने अपने बड़े भ्राता के आश्रम में जाकर, बिना उन की आज्ञा के, फल तोड़ कर खाये हैं ; अतएव मैं अब चोर हूँ । आप मुझे इस अपराध में न्यायानुसार दण्ड दीजिये राजा ने कहा कि, मैं आप जैसे महात्मा को कैसे दण्ड दे

सकता हूं । परन्तु लिखित ने दण्ड पाए विना जाने से इनकार किया । तब राजा ने न्याय के अनुसार लिखित मुनि के दोनों हाथ कटवा दिये ।

५—चोरी के अपराध में हाथ कटाकर, लिखित मुनि अपने भ्राता शङ्ख के निकट आए, और आकर उन से कहा कि, मैंने राजा के न्यायालय में जाकर चोरी का उचित दण्ड पालिया । अब आप मेरे अपराध को क्षमा कीजिये । अपने लघु भ्राता के वचन को सुन कर शङ्ख ने कहा कि भ्रातः! तुम ने मेरा कोई अपराध नहीं किया, जिसे मैं क्षमा करूँ । तुम धर्म से भ्रष्ट हुए थे, इस लिये मैंने तुम से राजा के पास जाने और पाप-मुक्त होने को कहा था । तुम ने सत्य का वर्ताव किया और अपने पाप कर्म का फल पाकर पाप से मुक्त हुए । अब तुम बाहुदा नदी के तट पर रह कर स्वाध्याय करो और फिर कभी कोई वस्तु उस के स्वामी की आज्ञा विना न लेना, ऐसा करना महा-पाप है ।

६—इस प्रकार अपने ज्येष्ठ-भ्राता शङ्ख से उपदेश पाकर लिखित मुनि नदी के तट पर जाकर स्वाध्याय करने लगे ।

इस कथा से हम को भी यही शिक्षा मिलती है कि बिना आज्ञा के कभी किसी की कोई वस्तु न लेवें और यदि हम से

कोई अपराध हो जाय तो उस को तत्क्षण स्वीकार करलें, अन्यथा उस का पाप अवश्य लगेगा ।

(बाल भारत से, परिवर्तित)

पाठ ४

प्रतिध्वनि ।

१—कृष्ण एक दिन सघन बन में खेलने गया । वहां उस ने एक बार "ओ३!" यह शब्द चिल्ला कर कहा, उस के उत्तर में भी उस को ओ३! ही सुनाई दिया ।

२—उस ने कहा "कौन है" उस के उत्तर में भी "कौन है" यही ध्वनि उस के कान में आई । यह सुन कर वह बड़ा विस्मित हुआ और चारों ओर आश्चर्य्य से देखने लगा किन्तु उत्तर देने वाला कोई उस की दृष्टि में न आया ।

३—उस ने सोचा कि बन में छिपा कोई मनुष्य मुझ से उपहास कर रहा है और मेरे शब्दों को दोहरा रहा है, इस लिये उस ने चिल्ला कर कहा "मूर्ख मनुष्य!!" उस को "मूर्ख मनुष्य !" ही उत्तर मिला ।

४—इस पर कृष्ण को क्रोध आ गया और वह अपशब्द बकने लगा किन्तु उत्तर में उस को बन में से वे ही अपशब्द फिर सुनाई दिये ।

५—कृष्ण ने सारे बन को ढूँढा किन्तु उस के शब्दों का अनुकरण करने वाला उस को वहां कोई भी न मिला। विवश होकर वह अपने घर को लौट आया और वहां आनकर उस ने अपने पिता से कहा कि बन में छिपा हुआ कोई मनुष्य मेरे शब्दों का अनुकरण कर रहा था और मैं उस को वहाँ देख न सका।

६—उस के पिता ने उत्तर दिया, "कृष्ण! वहां तुम्हारे शब्दों का अनुकरण करने वाला कोई भी नहीं था; वह तुम्हारे शब्दों की प्रति-ध्वनि मात्र थी, जो लौटकर तुम्हारे कानों में आती थी।

जब हम किसी सघन बन वा किसी बन्द और ऊँचे गृह में उच्च-स्वर से कोई शब्द बोलते हैं तो हमारे कानों में वही शब्द लौट कर सुनाई देता है; इस का कारण यह है कि हमारे शब्दों की गूँज वायु में भर कर उस बन्द गृह वा बन से बाहर नहीं जाने पाती किन्तु भित्तियों वा वृक्षों से टकराकर फिर हम को सुनाई देती है। इस टकराकर लौटी हुई ध्वनि को प्रतिध्वनि कहते हैं।

७—कृष्ण! अपशब्द प्रथम तुम्हारे ही मुख से निकले थे यदि तुम अच्छे शब्द बोलते तो उत्तर में भी तुम को

अच्छे शब्द सुनाई देते। "अच्छे शब्दों की प्रति-ध्वनि भी अच्छी आती है"; इस लिये जब बोलो अच्छे और मधुर शब्द ही बोलो" ।

पाठ ५

भैंस ।

१—तुम प्रथम पाठावली में गौ का वर्णन पढ़ आए हो, भैंस में भी गौ के सदृश कई बातें पाई जाती हैं । भैंस भी दूध पिलाने वाला जन्तु है । सब दूध देने वाले जन्तु स्तन-पायी कहलाते हैं। भैंस भी गौ आदि के सदृश द्विशफ (दो खुर वाला) पशु है । उस के भी शृङ्ग होते हैं; उसे भी मनुष्य दुग्ध के लिये पालते हैं । वह भी रोमन्थ करती है और उस का खाद्य भी घास और भुसा है ।

२—गौ से उस में विशेषताएँ ये हैं कि उस का चर्म्म गौ की अपेक्षा दृढ़तर होता है; उस का रंग प्रायः काला होता है । शरीर उस का भारी होता है । इसी लिये उस की टांगें भी अधिकतर दृढ़ और छोटी होती हैं और वह शीघ्र और बहुत दूर तक भाग नहीं सकती ।

३—भैंस गरमी से घबराती है। जल उस को बहुत प्रिय है । वर्षा-ऋतु में वह अति प्रसन्न रहती है और हृष्ट पुष्ट हो

जाती है। वह बहुत देर तक जलाशयों में पड़ी रहती है। उस को तैरना भी आता है,वह कैसे ही वेग वाले जल-प्रवाह को तैर कर पार कर जाती है। बहुत से मनुष्य उस की पूँछ पकड़ कर नदी से पार उतरते हैं किन्तु उस में कठिनाई यह है कि वह जब चाहती है, जल में बैठ जाती है और उस के साथ वाले मनुष्य के डूब जाने की सम्भावना रहती है।

४—भैंस गौ की अपेक्षा बहुत दूध देती है और उस का दूध अन्य पशुओं के दूध से अधिक गाढ़ा और चिकना होता है। उस में मक्खन अधिक निकलता है किन्तु वह गोदुग्ध के समान स्वादु और हितकर नहीं होता।

५—भैंसे कृषि के काम आते हैं। उन में बैलों से अधिक बोझा ढोने की शक्ति होती है। वे कुएँ से चरस खींचते हैं, हल चलाते हैं और पर्वतों के ऊपर से लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठ ढोकर लाते हैं।

६—जङ्गली अवस्था में वे अरने वा अरण्य भैंसे कहलाते हैं और बड़े बलवान् होते हैं कभी कभी वे सिंह को भी मार गिराते हैं।

पाठ ६

उपदेश-कुसुमाञ्जलि।

(१)

करो सदा जग में शुभ काम,
जिस से मिले तुम्हें धन धाम।
दुष्कर्मों को दीजे त्याग,
मन की पकड़ लीजिये बाग॥

(२)

विद्या बिना न आदर होय,
जग में बात न पूछै कोय।
जो विद्या पढ़ते भरपूर,
वे रहते प्रमोद में चूर॥

(३)

विद्या सम धन नहिं जग और,
उसे चुरा सकते नहिं चौर।
नृप से वह नहिं छीनी जाय,
बन्धु न उस को सकैं बँटाय॥

(४)

दया धर्म्म का है शुभ मूल,
इसे छोड़ना कभी न भूल।

हिंसा करते जो दिन रैन,
वे दुख के बनते हैं ऐन ॥

(५)

जिन के मन में है सन्तोष,
जग में वही पुरुष निर्दोष ।
सुख से रहते दुनिया बीच,
उन्हें न कोई कहता नीच ॥

(६)

पाप-कर्म्म से जिन का योग,
आस्तिक वे न कहाते लोग ।
नहीं जिन्हें ईश्वर का ज्ञान,
वे हैं महा-मूढ़ अज्ञान ॥

(७)

करते नहीं जो ईश्वर-ध्यान,
वे अवश्य पापी नादान ।
उन का होता नहिं कल्यान,
जग में पाते कष्ट महान ॥

{ श्रीमती पार्वती देवी कृत
सरस्वती पत्रिका प्रयाग से }

पाठ ७

आम ।

१–आम भारत-वर्ष का प्रधान और प्रख्यात फल है। वह बड़ा स्वादु और सुगन्ध-मय होता है, उस के कई भेद हैं; यथा–मालदा, सन्दूरिया, ककाड़िया कल्मी, मोहन-भोग और लंगड़ा आदि आदि। उस का आकार भी विविध प्रकार का होता है। वह तोल में न्यूनाधिक एक छटांक से लेकर आध सेर तक होता है।

२–उस की फ़सल वर्षा-ऋतु में आती है। प्रथम फाल्गुन वा चैत्र मास में उस के वृक्षों पर मौर आता है मौर आम के पुष्प को कहते हैं उन दिनों उस की सुगन्ध से सारा उद्यान महक उठता है। कोकिल को आम से बड़ा प्रेम है, यह पक्षी इस देश का वासी नहीं है किन्तु मौर आते ही यह इस देश में आजाता है आम के वृक्षों पर इस की कूक उद्यान की शोभा को द्विगुणित कर देती है।

३–जब मौर सूख कर गिर पड़ता है, उसी के स्थान में, शाखाओं पर छोटे २ फल निकल आते हैं और यही बढ़ते २ आम होजाते हैं। भारी आमों के बोझ से डालियां टूट पड़ती हैं। इस लिये वृक्षों में छींके लटका कर उन में

फलों को रख देते हैं और वे उन छींकों में रक्खे हुए ही बढ़ते रहते हैं ।

४–कच्चे आम खट्टे होते हैं मनुष्य उन की चटनी और अचार बना कर खाते हैं, किन्तु मनुष्य के लिये अधिक खटाई खाना हानि-कारक है उस से कई प्रकार के रोग हो जाते हैं विशेष कर ब्रह्मचारियों को तो खटाई कभी नहीं खानी चाहिये । आम का परि-पक्व फल खाने में मिष्ट और स्वादु होता है और शरीर को भी लाभ दायक होता है ।

५–फल के मध्य में गुठली होती है । इस गुठली को ही भूमि में बोने से आम का वृक्ष उत्पन्न होता है गुठली को बोकर जल देते रहते हैं । दो एक सप्ताह में अङ्कुर फूट कर उस में से एक पौधा निकल आता है ।

६–पौधा प्रथम बच्चे के समान छोटा होता है, किन्तु उस की भली प्रकार रक्षा की जाय तो वह बढ़ते २ बड़ा वृक्ष हो जाता है । उस का प्रकाण्ड (तना) मोटा हो जाता है और चार पांच वर्ष में उस पर फल आने लगते हैं ईश्वर की क्या ही अपरम्पार महिमा है कि ऐसी छोटी २ गुठलियों से ऐसे महाकाय वृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

७–आम का वृक्ष भी बड़ा सुन्दर होता है । वह हरित-पत्रों से आच्छादित रहता है । उस की छाया बड़ी सघन

होती है। विश्रान्त पथिक उस के नीचे ग्रीष्म ऋतु में विश्राम करते हैं, इस वृक्ष की लकड़ी गृह-निर्माण और ईन्धन के काम में आती है परन्तु वह साल वा शीशम के सदृश सुदृढ़ और चिरस्थायी नहीं होती; अतः इस के फलों से ही अधिक लाभ लेना चाहिये।

पाठ ८

प्रकाश-स्तम्भ।

१—समुद्र में कई ऐसी चट्टानें होती हैं कि जब जल चढ़ आता है, तो वे जल में डूबी रहती हैं और दिखलाई नहीं देतीं।

२—जहाज़ों को कभी २ इन चट्टानों से बड़ी हानि पहुँचती है, जब समुद्र में पूर वा बाढ़ आती है जहाज़ चलाने वाले इन जल-मग्न चट्टानों को नहीं देख सकते और उन के जहाज़ अचानक इन से टकराकर टुकड़े टुकड़े होकर डूब जाते हैं।

३—सब से अधिक भय रात्रि के समय होता है, क्योंकि दिन के समय तो चकराती हुई लहरों से ज्ञात भी हो जाता है कि यहां जल में चट्टान है किन्तु रात्रि में कुछ नहीं देख पड़ता।

४—जहाज़ों को इस आपदा से बचाने के लिये ऐसी चट्टानों पर प्रकाश-स्तम्भ बना दिये जाते हैं। प्रकाश-स्तम्भ ऊँचे मीनार के आकार का एक प्रकार का गृह होता है। उस के शिखर पर एक बड़ी लालटेन लगी रहती है। वह रात्रि भर प्रकाशित रहती है। जहाज़ चलाने वाले इस प्रकाश को देख कर उधर जहाज़ ले जाने से बच जाते हैं।

५—प्रकाश-स्तम्भ को कौन प्रकाशित करता है? उस पर एक मनुष्य नियुक्त रहता है; उस का कर्तव्य यही होता है कि वह लालटेन को नित्य प्रकाशित कर दिया करे और उस को स्वच्छ और सज्जित बनाए रक्खे। उस का परिवार भी प्रकाश-स्तम्भ के निचले गृह में उस के साथ निवास करता है और उस के कार्य्य में उस को सहायता देता है।

६—कभी २ समुद्र ऐसा क्षुब्ध हो जाता है कि प्रकाश-स्तम्भ पर से मनुष्य भूमि पर नहीं जा सकते वा स्थल से कोई मनुष्य उन के पास नहीं पहुँच सकता।

७—एक बार एक प्रकाश-स्तम्भ का रक्षक अपनी नौका लेकर स्थल पर कुछ भोज्य पदार्थ लेने गया और अपने पीछे प्रकाश-स्तम्भ पर, केवल अपने एक आठ वर्ष के बालक पुत्र को छोड़ गया।

८—वह अभी किनारे से लौटा नहीं था कि समुद्र में बड़े वेग से पूर आया । अन्धकार बढ़ता ही जाता था । रक्षक जानता था कि मैं किसी प्रकार समय पर प्रकाश-स्तम्भ तक नहीं पहुँच सकता, सब से अधिक भय उसे चट्टान से जहाज़ों के टकरा जाने का था, क्योंकि प्रकाश-स्तम्भ को प्रकाशित करने वाला उस दिन वहाँ कोई विद्यमान् न था ।

९—वह इसी चिन्ता में डूबा हुआ था कि कुछ काल पश्चात् उस को कैसी प्रसन्नता हुई जब कि उस ने प्रकाश-स्तम्भ के प्रकाश को किनारे पर से चमकते देखा ।

१०—उस को किस ने प्रकाशित किया था क्या तुम सोच सकते हो ? प्रकाश-स्तम्भ में केवल उस का छोटा बालक ही विद्यमान था, उस ने अपने पिता को लैम्प को ठीक और प्रकाशित करते हुए देखा था ।

११—बालक यह भी जानता था कि नित्य जब अन्धकार होने लगता है तब यह लैम्प जलाया जाता है; इस लिये वह यथा-समय अकेला ही स्तम्भ के शिखर पर चढ़ गया । उस ने देखा कि वायु बड़ा प्रचण्ड चल रहा है और समुद्र की लहरें चट्टान और स्तम्भ से टकरा रही हैं, किन्तु बालक भयभीत नहीं हुआ, वह एक कुरसी पर चढ़ा, पर उस का हाथ लैम्प तक न पहुँच सका, तब उस ने उस कुरसी

पर एक और कुरसी रख कर और उस पर चढ़ कर अपना हाथ वहां तक पहुँचाया, और दियासलाई जलाकर लैम्प को प्रकाशित कर दिया, क्षण मात्र में उस घोर अन्धकार में प्रकाश-स्तम्भ से आनन्द दायक प्रकाश चमकने लगा।

१३—उस रात्रि उस बालक के उद्योग से बहुत से जहाज़ आपदा से बच गये। जहाज़ वालों ने ईश्वर को धन्यवाद दिया और उस बालक को आशीर्वचन कहे। उस की भलाई की कथा सारे देश में फैल गई। **जो दूसरों का उपकार करते हैं उन की सारे जगत् में भलाई होती है।**

पाठ ९

गन्ना।

१—तुम ने बूरा, शक्कर वा गुड़ अवश्य खाया होगा, किन्तु तुम में से बहुत से कदाचित् यह न जानते होंगे कि ये चीज़ें किस वस्तु से और क्योंकर बनती हैं। बूरा आदि सब मिठाई गन्ने से ही बनती हैं। गन्ना तो तुम ने खाया ही होगा; आज इस पाठ में गन्ने का ही वर्णन करते हैं।

२—गन्ना डंडे के से आकार का एक वृक्ष होता है। उस में और वृक्षों के समान शाखा नहीं होतीं, प्रत्युत वह

मूल से चोटी तक सरल ही बढ़ता है। उस में बांस के सदृश पोरियां और गिरह होती हैं। उस की चोटी पर लम्बे, नोकीले और दुधारे पत्ते होते हैं वे अगोले कहलाते हैं और पशुओं का रुचिर खाद्य (चारा) होते हैं।

३—गन्ने में मीठा रस भरा रहता है। मनुष्य उसे दातों से छील काटकर, वा चाकू से गंडेरियां बनाकर उस का रस चूसते हैं। इस प्रकार खाने से वह बड़ा स्वादु लगता है, गन्ने के रस से ही शर्करा आदि सब मिठाइयां बनती हैं। गन्ने के वृक्षों के समुदाय को ईख कहते हैं।

४—ईख गरम देशों में उत्पन्न होती है। सर्द देशों में उस का पौधा जीवित नहीं रह सकता। ईख चैत्र वैशाख में बोई जाती है। उस के बोने की रीति यह है कि गन्ने के छोटे छोटे टुकड़े करके खेतों में दबा देते हैं। उस की प्रत्येक गिरह से जहां आंख होती है, अंकुर फूट कर पौधा निकलता है। ग्रीष्म ऋतु में उन पौधों की बड़े यत्न से रक्षा की जाती है

वर्षा आरम्भ होने पर उन को यथेच्छ जल मिलता है, जिस से वर्षा ऋतु के अन्त तक वे बढ़कर अच्छे बड़े और मोटे हो जाते हैं। कच्चा गन्ना फीका होता है। कार्त्तिक मास तक वह पक कर मीठा हो जाता है।

५–खेतों में से गन्नों को काट कर ग्राम में ले आते हैं। वहां उन को एक यन्त्र में, जिस को कोल्हू कहते हैं, दबा कर उन का रस निकालते हैं। रस को लोहे के बड़े बड़े कड़ाहों में डालकर पकाते हैं। जब वह पकते २ गाढ़ा हो जाता है उस को ठंडा करके मटकों में भर देते हैं; यह राब कहलाती है। यदि रस से गुड़ बनाना होता है, तो उस को अधिक गाढ़ा पकाते हैं और फिर उस को ठंडा कर के उस की भेली वा गिंदोड़ बांध लेते हैं, और यदि खरा माल हुआ तो कूट कर शक्कर बना लेते हैं।

६–राब से खाँड वा शर्करा बनाई जाती है। राब को एक स्थान विशेष में एक कोठे के अन्दर एकत्र कर के उस पर सूखी शैवाल (सिरवाल) घास बिछा देते हैं, और उस स्थान को उष्ण रखते हैं। शैवाल की उष्णता से राब में से शीरा (पतलारस) निचड़ कर पृथक् हो जाता है और शुद्ध शर्करा ऊपर रह जाती है। यह शर्करा धूप में सुखाने और मलने से और भी अधिक स्वच्छ और श्वेत हो जाती है। गन्ने से शर्करा बनाने के कार्य्य को खण्डसाल का व्यापार कहते हैं। शर्करा से ही अन्य सब प्रकार के मिष्टान्न बनते हैं।

७–हमारे भारतवर्ष में ईख की खेती और खांड का व्यापार सब से अधिक होता है और उस से राजा प्रजा

दोनों को बड़ी आय होती है। हमारे देश की सी स्वच्छ और मिष्ट शर्करा और कहीं नहीं बनती। अन्य देशों से जो शर्करा आती है वह अपवित्र पदार्थों के मेल से बनती है और उस में स्वदेशी शर्करा का सा मिठास और गुण भी नहीं होता; इस लिये स्वदेशी शर्करा ही सदैव काम में लानी उचित है।

पाठ १०

दो बकरियां।

१—एक ढलवां पहाड़ी पर दो बकरियां आमने सामने आती हुई एक पगदण्डी पर मिल गईं। वह पग-दण्डी ऐसी नेड़ी थी कि उन दोनों के बचकर निकल जाने वा पीछे लौट जाने के लिये भी वहां स्थान न था।

२—उस पग-दण्डी के एक ओर तो एक ऊंचा चट्टान खड़ा हुआ था और दूसरी ओर एक बड़ी गहरी और वेगवती जल की धारा बहती थी। तुम्हारे विचार में उन दोनों बकरियों ने क्या किया होगा ?।

३—उन में से एक बड़ी सावधानी से उस नेड़ी पगदण्डी में लेट गई और उस ने शरीर को उस चट्टान से चिपटाए रक्खा।

४–दूसरी बकरी शनैः उस के ऊपर पैर रखकर निकल गई और उस के चले जाने पर पहली बकरी ने भी उठकर अपना मार्ग लिया।

५– इस प्रकार दोनों बकरियां उस संकुचित मार्ग से निकल गईं और फिर आनन्द पूर्वक हरी हरी दूब (दूर्वा) का स्वाद लेती हुई जङ्गल में विचरने लगीं। यदि उन्हों ने एक दूसरे की सहायता न की होती और दोनों ने ही प्रथम निकलने का आग्रह किया होता, तो वे टकरा कर और उस गहरी नदी में गिर कर अवश्य नष्ट हो जातीं किन्तु परस्पर सहायता करके वे दोनों बच गईं।

६–हम को भी उचित है कि जब हम पर कोई संकट आन पड़े तो परस्पर सहायता करें और पहले पीछे के लिये न झगड़कर अपने ही कार्य्य साधने का ध्यान न रक्खें।

पाठ ११

कपास।

१–जो वस्त्र हम पहनते हैं, वे ऊन वा कपास से बनते हैं। कपास वृक्ष पर लगती है। कपास के वृक्ष को **बाड़ी** का पौधा भी कहते हैं। कपास के वृक्ष दो प्रकार के होते

हैं। एक प्रकार के बड़े वृक्षों के सदृश ऊँचे होते हैं और दूसरी प्रकार के दो डेढ़ गज़ ऊँचे छोटे होते हैं। बाड़ी के पत्ते हरे और फूल पीले होते हैं; खिले हुए पुष्पों का दृश्य बड़ा मनोहर होता है; यह प्रतीत होता है कि मानो केसर फूल रही है।

२—जब पुष्प गिर पड़ते हैं, तब उन के स्थान में फल लग आते हैं। कच्चे फल हरे होते हैं, परन्तु पकने पर उन में कुछ लाली की झलक आजाती है।

जब फल पूर्ण रूप से पक जाते हैं तो वे सूख कर खिल जाते हैं और उन में से श्वेत और नरम रूएँ वाली एक वस्तु निकलती है; वही कपास कहलाती है। वस्तुतः फल के मध्य का तन्तु-मय गूदा ही सूख कर कपास बन जाता है; फटे हुए फलों में से सब कपास चुन कर एकत्र कर ली जाती है।

३—फलों में से जो कपास निकलती है, उस में उस के बीज भी छिपे रहते हैं; उन को बिनौले कहते हैं। वे एक यन्त्र द्वारा जिस को चरखी कहते हैं, कपास में से पृथक् कर लिये जाते हैं। बिनौलों से पृथक होकर कपास का नाम रुई हो जाता है।

४—रुई को धुन कर मुलायम और स्वच्छ बनाया जाता है। यह कार्य करने वाला धुना या धुनिया कहलाता है। फिर

चरखे में कात कर उस का सूत बनाते हैं। सूत से बहुत प्रकार के मोटे और महीन वस्त्र बुने जाते हैं।

५-हमारे देश में बहुतायन से रुई उत्पन्न की जाती है, किन्तु यहां से उस का अधिकांश इङ्गलेण्ड को जाता है और वहां से उस का यन्त्रों द्वारा कपड़ा बुना जाकर यहां बिकने आता है। इङ्गलेण्ड देश में कपड़ा बुने जाने के बहुत से कारखाने हैं। यदि हमारे देश की रूई का कपड़ा, कारखाने स्थापित कर के यहीं बनाया जाय तो इस देश को बड़ा लाभ हो और जो बहुत सा धन कपड़े के मूल्य में यहां से इङ्गलेण्ड आदि देशों को जाता है वह यहाँ का यहीं रहे।

पाठ १०

शिष्टाचार-शिक्षा।

१-जब दूसरों से मिलो, प्रसन्न होकर मिलो। जो तुम से बड़े हैं, उन को देखकर नमस्ते वा प्रणाम करो; उन के सामने सभ्यता से बैठो, अर्थात् उन से ऊँचे आसन पर वा उन की ओर पीठ कर के कभी न बैठो और उन से नम्रता से वार्तालाप करो।

२-भ्राताओं और साथियों से सदा प्रेम पूर्वक बर्ताव करो। उन की भलाई में अपनी भलाई समझो. यदि तुम उन

से प्रेम करोगे तो वे भी तुम से प्रेम करेंगे ।

३—सज्जनों का अनुकरण करो और दुष्टों के सङ्ग से सदा बचो । दुखियों की सहायता करो और अपराधियों के अपराध क्षमा करो ।

४—यदि कोई तुम से बुराई करे तो बुराई का बदला बुराई से न लो किन्तु यदि हो सके तो बुराई का बदला भलाई से दो ।

५—जो तुम्हारा उपकार करे उस का उपकार कभी न भूलो, किन्तु सदा उस के कृतज्ञ बने रहो । कृतघ्नता बड़ा दोष है । कृतघ्नी के साथ फिर कोई भलाई नहीं करता ।

६—सदा सावधान रहो, क्योंकि समय थोड़ा और काम बहुत है । प्रति-दिन अपने कामों की गणना करो और विचारो कि उस दिन तुम ने क्या खोया और क्या पाया । जिस दिन कोई नई बात न सीखी हो, समझलो कि वह दिन व्यर्थ ही गया ।

७—दूसरों के साथ ऐसा बर्ताव करो, जैसा कि तुम औरों से अपने लिये चाहते हो अर्थात् जो बर्ताव तुम अपने लिये नहीं चाहते वह औरों के लिये कदापि न करो । किसी को बुरा न कहो; तुम को भी कोई बुरा न कहेगा । तुम औरों की सहायता करो; तुम्हारी सहायता ईश्वर करेगा ।

पाठ १३

गिलहरी ।

कहते जिसे गिलहरी हैं सब ।
सभी निराले इस के हैं ढब ।
पेड़ों से नीचे है आती ।
फिर पेड़ों पर है चढ़ जाती ।
कुतर कुतर फल को है खाती ।
बच्चों को है दूध पिलाती ।
इस की रंगत भूरी कारी ।
आँखों को लगती है प्यारी ।
होती है यह इतनी चंचल ।
कहीं नहीं इस को पड़ती कल ।
उछल कूद में है यह जैसी ।
दौड़ धूप में भी है वैसी ।
बैठी इस धरती के ऊपर ।
दोनों हाथों में कुछ लेकर ।
जब यह जल्दी से है खाती ।
तब है कैसी भली दिखाती ।
चिकना चिकना रोआँ इस का ।
लुभा नहीं लेता जी किस का ।

मत तुम इस को ढेले मारो ।
जी में इतनी बात विचारो ।
कहीं इसे जो लग जावेगा ।
तो इस का जी दुख पावेगा ।
अब तक सब ने है यह माना ।
जी का अच्छा नहीं दुखाना ॥

{ पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय कृत;
सरस्वती पत्रिका प्रयाग से }

पाठ १४

पहिये पर अपना ही कन्धा लगाओ ।

१—एक किसान बोझ से लदी हुई अपनी गाड़ी सड़क पर लेजा रहा था। आगे चल कर सड़क में एक स्थान पर दलदल भरी हुई थी। उस दलदल में उस की गाड़ी फँस गई और उस में जुते हुए बैल उस को वहां से आगे न खींच सके।

२—गाड़ी कीचड़ में फँसी खड़ी थी और किसान प्रत्येक पथिक से, जो उस मार्ग से जाता था, अपनी गाड़ी को कीचड़ से निकलवा देने की प्रार्थना करता था, किन्तु उस की प्रार्थना पर कोई कान न देता था और प्रत्येक

यात्री उस को यही उत्तर देता था कि "पहिये पर अपना ही कन्धा लगाओ" ।

३—जब किसान प्रार्थना करते २ थक गया और उस की किसी ने सहायता न की तो उस ने विवश होकर अपनी गाड़ी के पहिये पर अपने ही कन्धे से बल लगाया और उस के बल लगाने से गाड़ी कीचड़ में से निकल आई ।

यदि वह पूर्व ही अपने कन्धे से बल लगाता तो उस को पथिकों से प्रार्थना करके निराश न होना पड़ता और उस की गाड़ी भी कभी की पहले कीचड़ से निकल गई होती ।

४—कई आलसी मनुष्य, जिस काम को वे स्वयं कर सकते हैं, उस को भी दूसरों से ही कराना चाहते हैं, और जब दूसरों से उन को उत्तर मिल जाता है तो उन को अपना काम स्वयं ही करना पड़ता है। इस कथा से हम को यही शिक्षा मिलती है कि अपने ऊपर भरोसा रख कर अपना काम सदा स्वयं करना चाहिये, जिस किसी से वृथा प्रार्थना करते फिरना उचित नहीं है। अपने ऊपर भरोसा करने को ही स्वावलम्बन कहते हैं स्वावलम्बन से ही सब कार्य्य सिद्ध होते हैं ।

पाठ १९

कुत्ता ।

१—मनुष्यों की छोटी से छोटी बस्ती में भी कोई न कोई कुत्ता अवश्य रहता है । यह जन्तु मनुष्य से बड़ा स्नेह रखता है । जिस मनुष्य से एक टुकड़ा भी पा लेता है उसका सदा कृतज्ञ बना रहता है; जब उस को देखता है प्रेम से अपनी दुम हिलाने लगता है । वह सब जन्तुओं से अधिक समझ रखता है; और ऐसा आज्ञाकारी और नम्र होता है कि सिखलाने से कई काम करने सीख जाता है । उस से अधिक कोई पशु अपने स्वामी का भक्त नहीं होता ।

२—कुत्ते का शरीर लम्बोतरा होता है । उस का सिर भी लम्बा और नोकीला होता है । उस के दांत बिल्ली के दांतों के समान तीक्ष्ण और नोकीले होते हैं । उस के शरीर पर बाल होते हैं; परन्तु सब कुत्तों के एक से बाल नहीं होते । शीत-प्रधान देशों के कुत्तों के शरीर पर उन की शीत से रक्षा के लिये ईश्वर ने लम्बे और सघन बाल दिये हैं । ग्रीष्म-प्रधान देशों में उन के शरीर पर छोटे २ बाल होते हैं । उन के बालों के रङ्ग भी विविध प्रकार के होते हैं ।

३—कुत्ते के नख बड़े दृढ़ होते हैं, वे बिल्ली के नखों के समान मुड़े हुए और तीक्ष्ण नहीं होते; प्रत्युत सीधे और कुंठ होते हैं। कुत्ता अपने नखों को बिल्ली के सदृश भीतर नहीं सिकोड़ सकता; उस के नख सदा बाहर ही रहते हैं, और इस लिये उस के चलने में शब्द होता रहता है। उस की टांगे पतली होती हैं जिन से वह अति शीघ्रता से भाग सकता है।

४—कुत्ता मांसाहारी जन्तु है। उस की घ्राण शक्ति बड़ी प्रबल होती है। वह बिलों में छिपे हुए शशों और चूहों को सूंघ कर झट पा लेता है, और उन पर दौड़कर तत्काल ही आक्रमण कर देता है। बिल्ली के सदृश वह अपने शिकार पर घात नहीं लगाता।

५—कुत्ते की जिह्वा बिल्ली के सदृश खुरदरी नहीं होती; प्रत्युत चिकनी और मुलायम होती है। उस को जब गरमी लगती है, वह अपना मुख खोल देता है और उस की जिह्वा से जल टपका करता है। उसे मनुष्यों की भांति स्वेद नहीं आता, मांसाहारी किसी जन्तु को भी स्वेद नहीं आता; स्वेद के स्थान में उन की जिह्वा से जल ही टपकता है।

६—ग्रामों में घूमने फिरने वाले कुत्तों में कोई अच्छे गुण नहीं होते; वे इधर उधर टुकडे खाते फिरा करते हैं;

किन्तु जो कुत्ते पले हुए होते हैं, उन को कई कर्तव्य सिखलाए जाते हैं। वे गृहों की रक्षा करते हैं किसी चोर उचक्के को नहीं आने देते; मुख में प्रकाश लेकर अपने स्वामी के साथ चलते हैं। कुत्तों की स्वामि-भक्ति की अनेक कथाएं प्रसिद्ध हैं।

पाठ १६

उद्योगी मोहन।

१—मोहन दश वर्ष का बालक था। एक दिन वह एक गठरी लिये हुए सड़क पर अपने ग्राम को जा रहा था। उस को तीन कोस जाना था और धूप तीक्ष्ण पड़ रही थी।

२—मार्ग में कई वृक्षों पर पक्षी-गण अपना मधुर शब्द सुना रहे थे। पुष्पों पर तितलियाँ इधर से उधर उड़ रही थीं। ऐसे दृश्य उस को ठहरने के लिये लुभा रहे थे, किन्तु मोहन शीघ्रता से अपने मार्ग चला जाता था। उस को केवल यह ध्यान था कि मैं जितना शीघ्र चलूंगा उतना ही पूर्व अपने स्थान पर पहुँचूगा।

३—इस प्रकार, जब वह चला जा रहा था, तो उस ने अपने पीछे से आती हुई एक गाड़ी का शब्द सुना, गाड़ीवान ने उस के निकट आनकर गाड़ी रोक दी, और उस से

यह ज्ञात करके कि, वह अगले ग्राम को जा रहा है, उस को अपनी गाड़ी पर बैठने की आज्ञा दी ।

४—मोहन गाड़ीवान को धन्यवाद देकर सहर्ष उस की गाड़ी पर बैठ लिया। गाड़ीवान ने जो सज्जन किसान था मोहन से वार्तालाप प्रारम्भ किया, उस ने पूँछा,—"तुम जानते हो मैंने तुम को अपनी गाड़ी पर क्यों बैठाया है ? मोहन ने उत्तर दिया "नहीं"

५—गाड़ीवान ने कहा, "इस का कारण यह है कि मैंने तुम को शीघ्रता से जाते हुए देखा और अपने कर्तव्य पर आरूढ़ पाया; इस लिये मैंने तुम को अपनी गाड़ी पर बिठला कर तुम्हारी सहायता की है ।

६—यदि मैं तुम को यह गठरी लिये हुए आलसियों के समान जाते और व्यर्थ समय खोते देखता, तो मैं तुम्हारी बात भी न पूँछता । मैं उन मनुष्यों की ही सहायता करना उचित समझता हूँ, जो अपनी सहायता आप करते हैं अर्थात् जो स्वकर्तव्य में संलग्न हैं ।

७—बालको ! उस सज्जन किसान की बात पर तुम भी ध्यान दो। तुम जहाँ कहीं हो और जो कुछ भी करते हो, उस को परिश्रम से चित्त

लगा कर करो, आलसी मत बनो और काम के समय को व्यर्थ खेल कूद में मत गँवाओ।

पाठ १७

सिंह।

१—जो जन्तु दूसरे जन्तुओं को मार कर उन का मांस खाते हैं, वे **मांसाहारी** वा हिंस्त्र जन्तु कहलाते हैं। तुम को विदित है कि बिल्ली भी एक हिंस्त्र जन्तु है। वह चूहे आदिकों को मार कर खा जाती है। तुम बिल्ली का वर्णन पढ़ आए हो। आज बिल्ली से मिलते जुलते, परन्तु उस से बहुत बड़े एक जन्तु का वर्णन सुनो

२—हिंस्त्र जन्तुओं में सब से वाक्ष्ठ सिंह है। उस की आकृति बिल्ली से नितान्त मिलती है. वा उस को एक प्रकार की सब से बड़ी बिल्ली ही समझना चाहिये। जैसे बिल्ली के पंजों के नीचे माँस की गद्दी होती है और उस से उस के चलने में आहट नहीं होती, वैसे ही सिंह के पंजों के नीचे भी गद्दी होती है और उस के चलने में तनिक आहट नहीं होती।

वह बिल्ली के समान ही अपने नखों को इस गद्दी में छिपाए रहता है, और जब अपने शिकार पर आक्रमण करता

है, तो नखों को झट बाहर निकाल लेता है। सिंह का पंजा बड़ा भयानक होता है; वह जिस जन्तु पर एक वार पड़ जाता है फिर उस का बचना कठिन है।

३—हिंस्र जन्तु रात्रि में अपना शिकार पकड़ते हैं; इस के लिये उन को अन्धकार में भी देखने की आवश्यकता है। ईश्वर ने उन की आँख की बनावट ऐसी रक्खी है कि, उस से वे अन्धकार में भी देख सकते हैं।

५—आँख के तिल में, जब बाहर से प्रकाश जाता है तब ही वह देखती है। रात्रि को प्रकाश बहुत न्यून होता है; इस लिये रात्रि-समय प्रकाश ग्रहण करने के लिये आँख का तिल बड़ा और विस्तृत होना चाहिए। अतएव रात्रि के समय अन्धकार में बिल्ली और सिंह आदि हिंस्र जन्तुओं की आँख का तिल बढ़ कर गोल और विस्तृत हो जाता है और उस में अधिक प्रकाश जा सकने के कारण, वे अन्धकार में भी देख सकते हैं।

२—इस के विपरीत दिन में उन की आँख का तिल सिकुड़ कर एक पतली रेखा मात्र रह जाता है, और उस में न्यून प्रकाश समाने के कारण वे दिन में न्यून देख सकते हैं; दिन में उन की दृष्टि में चका चौंध लगती है। वस्तुतः

उन को दिन में अधिक देखने की आवश्यकता भी नहीं होती, और वे दिन भर पड़े सोया करते हैं; रात्रि के समय ही वे अपना आहार ढूँढने निकलते हैं।

६–सिंह की टाँगें भी बिल्ली की टाँगों की भांति दृढ़ होती हैं और वह उस के ही समान दूर से छलाँग मार कर अपने शिकार पर जा पड़ता है। उस की मूछें भी बिल्ली की मूछों के समान होती हैं। इस समानता से हम को बोध होता है कि सिंह, बिल्ली की ही जाति में से है। जिनकी एकसी आकृति होती है, वे एक जातीय कहलाते हैं। अतः सिंह, बिल्ली, चीता आदि अनेक जन्तु, एक जातीय हैं। वे सब मार्जार जातीय जन्तु कहलाते हैं।

७–सिंह सब पशुओं का राजा वा "मृग-राज" कहलाता है। वह बड़ा भयानक, वीर और तेजस्वी जन्तु है। वह सघन बनों और पर्वतों में रहता है। जिस समय, वह गरजता है, सारे बन में सन्नाटा छा जाता है।

८–सिंह की ग्रीवा पर लम्बे २ बाल होते हैं यह उस की सटा या केसर कहलाती है, इसी लिए सिंह को केसरी वा केहरी कहते हैं; सिंही के सटा नहीं होती। सिंह के शरीर पर उज्वल, पीत, सघन रोमावली होती है, और उस की पीठ पर काली धारियाँ होतीं हैं।

९—वह गौ, भैंस आदि पालतू और उपकारी पशुओं को मार कर भक्षण कर जाता है। कभी कभी वह मनुष्यों को भी पकड़ कर खा जाता है इत्यादि बड़ी हानि करता है; इस लिये मनुष्य भी उस को बन्दूक़ आदि से शिकार करते हैं, और मार कर, उस का चर्म निकाल लेते हैं। सिंह-चर्म बड़ा सुन्दर होता है, और बिछाने के काम में आता है। उसे कई परिक्रियाओं से जब स्वच्छ और मुलायम बनाया जाता है तब वह बहुत मूल्य को बिकता है।

पाठ १८

अच्छी और बुरी संगति।

१—एक दिन मनोहर के पिता ने उस को बुरे बालकों में खेलते देखा। इस से कुछ दिनों पूर्व उसने मनोहर के कुछ अनुचित व्यवहार देखे थे। उन का कारण उस ने इस समय जान लिया। उस को बड़ा खेद हुआ, परन्तु उस समय उस ने मनोहर से कुछ न कहा।

२—सायंकाल को वह अपने उद्यान से दस अमरूद लाया और उन को एक टोकरी में रखकर, उसने मनोहर को दिया। मनोहर ने अपने पिता को धन्यवाद देकर अमरूदों की टोकरी ले ली।

३—उस के पिता ने उस को आज्ञा दी कि " ये अमरूद चार पाँच दिन तक इस टोकरी में ऐसे ही रक्खे रहें जिस से कि ये भली प्रकार पक जावें"। मनोहर ने उस की आज्ञानुसार अमरूदों की टोकरी अपनी माता की अलमारी में रख दी।

४—जब वह उस टोकरी को रख रहा था, उस के पिता ने उस में एक सड़ा हुआ अमरूद और रख दिया और मनोहर से कहा कि इस को भी इसी टोकरी में रक्खा रहने दो।

५—मनोहर ने कहा, "पिता जी ! इस गले हुए अमरूद के साथ अन्य अच्छे अमरूद भी गल जावेंगे"।

६—पिता ने कहा, "पुत्र ! तुम्हारा ऐसा विचार क्यों है? अच्छे अमरूदों के साथ गला अमरूद भी क्यों न अच्छा हो जावेगा" यह कहकर उस ने अलमारी को बन्द कर दिया।

७—चार पाँच दिन पश्चात् उसने मनोहर को अलमारी खोलकर अमरूदों की टोकरी बाहर निकालने की आज्ञा दी। उस ने उस को निकाल कर देखा तो, दस अच्छे अमरूद भी गलकर सड़ गये थे और सारे में उन की दुर्गन्ध फैल रही थी।

८—मनोहर ने कहा, "पिता जी! मैंने पूर्व ही निवेदन किया था कि गले हुए अमरूद के साथ अच्छे अमरूद भी गल जावेंगे।"

९—पिता ने उत्तर दिया, " प्रिय पुत्र ! क्या मैंने तुम को कई बार नहीं कहा है कि बुरे बालकों की सङ्गति से तुम भी बुरे बन जाओगे, किन्तु तुम ने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया । मैं चाहता हूं कि तुम इन अमरूदों से ही शिक्षा लो, यदि तुम बुरों की संगति करोगे तो तुम भी उन के ही समान हो जाओगे "।

१०—मनोहर ने वह शिक्षा फिर कभी नहीं भुलाई । जब कभी उस के पहले साथी उस को खेलने के लिये बुलाते वह गले अमरूदों का ध्यान कर लेता, और उन के साथ खेलने से इनकार कर देता । तुम को भी मनोहर के समान बुरी संगति से सदैव बचना चाहिए ।

पाठ १९

भारत माता ।

१—भारत माता यही हमारी ।
है यह हम को अतिशय प्यारी ॥
इस की बार बार बलिहारी ।
तन मन धन सब इस पर वारी ॥
२—शोभा पुञ्ज हिमालय इस में ।
विन्ध्याचल उदयाचल इस में ॥

इस में मलयाचल भाता है ।
जग में सौरभ फैलाता है ॥
३—गङ्गा यमुना बहती इस में ।
सरस्वती लहराती इस में ॥
इस में सिन्धु सोन भद्रा है ।
और चन्द्र-भागा सिप्रा है ॥
४—"सुजल सुफल" है मही यहाँ की ।
"सस्य श्यामला" मही यहाँ की ।
मलयज-शीतल मही यहाँ की ।
विविध-मनोहर मही यहाँ की ॥
५—लता, पत्र, फल पुष्प यहाँ हैं ।
हरे भरे सब वृक्ष यहाँ हैं ॥
जड़ी बूटियाँ बहुत यहाँ हैं ।
सुख दायक सब वस्तु यहाँ हैं ॥
६—दिव्य अन्न है, निर्मल जल है ।
सभी भाँति शोभित भूतल है ॥
वायु यहाँ का अति हितकर है ।
सकल-पदार्थ जाति सुखकर है ॥
७—लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना ।
मानिक, नीलम, हीरा, पन्ना, ॥

स्थान स्थान पर धरा हुआ है ।
खानों भीतर भरा हुआ है ॥

८—राम, कृष्ण की है यह माता ।
द्रोण, भीष्म की है यह माता ॥
अर्जुन, विक्रम की यह माता ।
शिव प्रताप की है यह माता ॥

९—वाल्मीकि मुनि की यह माता ।
व्यास पतञ्जलि की यह माता ॥
जैमिनि, गौतम की यह माता ।
यही हमारी सब की माता ॥

१०—राम, कृष्ण के भाई हैं हम ।
द्रोण, भीष्म के भाई हैं हम ॥
अर्जुन, विक्रम के भाई हम ।
इस नाते सब के भाई हम ॥

११—इस में जन्म लिये से पाया ।
ऐसा पद हमने मन भाया ॥
करें सकल सुत ध्वनि सुखदाता ।
जय जय जय जय भारत माता ॥

१२—इक तन इक मन हो सब भाई ।
आओ मिल लें भाई भाई ॥

माता इस से सुख पावेगी ।
लोक मान्य यह हो जावेगी ॥

{ श्री पं० गिरिधर शर्मा कृत,
सरस्वती पत्रिका, प्रयाग से }

नोट—अध्यापक महाशय को चाहिये कि इस कविता में जिन नदियों और महापुरुषों के नाम आये हैं, उन का संक्षिप्त भौगोलिक और ऐतिहासिक वर्णन ब्रह्मचारियों को भली भांति सुनादें ।

पाठ २०

चिउँटी ।

१—जन्तु कई प्रकार के होते हैं । उन में से पक्षियों और पशुओं में से कई एक के वृत्तान्त तुम पढ़ आये हो । आज एक अन्य प्रकार के जन्तु का वर्णन करते हैं । जो छोटे २ जन्तु भूमि पर रेंगते फिरते हैं वे कृमि कहलाते हैं। चिऊँटी भी एक छोटा सा कृमि ही है ।

२—चिऊँटियाँ झुण्ड बाँध कर इकट्ठी रहती हैं, और अपना काम भी एकत्र मिल कर ही करती हैं । वे बड़ी साहसी होती हैं, और अपना खाद्य बड़े श्रम से संग्रह करती हैं उन को आगे आने वाली वर्षा और जाड़े का पूर्व से ही ध्यान रहता है और इस लिये वे ग्रीष्म में अटूट परिश्रम से

अपना खाद्य संचय करके अपने बिलों में भर लेती हैं और ग्रीष्म ऋतु में ही इतना खाद्य एकत्र कर रखती हैं कि वह उन को जाड़े और वर्षा को पर्य्याप्त होता है।

३–वे जब चलती हैं, तो नियम से सीधी पङ्क्ति बाँध कर चलती हैं; कोई भी पङ्क्ति से इधर उधर विचलित नहीं होती। मीठे से उन को बड़ा प्रेम है। उन की घ्राण शक्ति ऐसी प्रबल होती है कि मीठा कहीं क्यों न रक्खा हो, वे उस की गन्ध पाकर वहीं पहुंच जाती हैं, यदि कहीं मीठे का ढेर लगा हो तो वे उस को भी थोड़ा २ करके ढो लाती हैं। सच है समुदाय की शक्ति बड़ी बलवती होती है; चिउँटियाँ बिचारी कैसी छोटी होती हैं और इतने बड़े ढेर को समुदाय के बल से ही उठा ले जाती हैं। यदि थोड़ा थोड़ा बाँट कर किया जाय तो कितना ही बड़ा कार्य्य हो, पूरा हो जाता है।

४–चिउँटी के छः टाँगें होती हैं और प्रत्येक टाँग में दो पञ्जे होते हैं। उन्हीं पञ्जों से वह वृक्षों और भित्तियों पर चढ़ जाती है। उस के दो आँखें होती हैं। उस के मुख में तीक्ष्ण छोटे दाँतों वाले दो जबड़े होते हैं। उस के दो लम्बी मूछें और एक डंक होता है।

५—वे अपने रहने के बिल भूमि में वा भित्ति वा शुष्क वृक्षों में बनाती हैं। बिल ऊपर से तो एक छिद्र सा ही दीखता है किन्तु उस के भीतर छोटे २ गृह और मार्ग बने होते हैं। बिल में ही वे अण्डे देती हैं और अण्डों से बच्चे उत्पन्न होते हैं। वे अपने बच्चों की बड़े यत्न से रक्षा करती हैं।

६—बाहर उन को जो खाद्य पड़ा मिलता है, वे उस को अपने बिल में उठा लाती हैं, और वहाँ लाकर सब उस को परस्पर बाँट कर खाती हैं। एक बिल में रहने वाली सब चिउँटियाँ एक दूसरी को पहचानती हैं और आपस में बड़े प्रेम से रहती हैं; शत्रुओं को अपने गृह में नहीं आने देतीं।

चिउँटियों से तुम कई शिक्षा ले सकते हो।

(क) तुम को उन का सा साहसी और उद्योगी बनना चाहिये।

(ख) देखो! वे वर्षा आने से पूर्व कैसा अपना खाद्य संचय कर रखती हैं तुम को भी परीक्षा से बहुत पूर्व अपना पढ़ा हुआ तय्यार कर रखना चाहिये।

(ग) उन की नियम पूर्वक गति से तुम भी नियम में चलना सीखो।

पाठ २१

ग्रीष्म ।

ज्येष्ठ और आषाढ़ के मास ग्रीष्म ऋतु कहलाते हैं। ग्रीष्म में अत्यन्त गरमी पड़ती है। इन दिनों की धूप बड़ी प्रचण्ड और असह्य होती है। पर्वतों से निकलने वाली नदियों को छोड़कर और सब नदी नाले और जलाशय सूख जाते हैं। जंगल में पशु पक्षी प्यास से व्याकुल रहते हैं। इस ऋतु में वायु भी गरम चलती है। मनुष्य एड़ी से चोटी तक स्वेद से नहा जाते हैं।

२—इस ऋतु में दिन बड़े और रात्रि छोटी हो जाती हैं, आलसी मनुष्यों को ग्रीष्म का दिन काटना दूभर हो पड़ता है, किन्तु उद्योगी और कर्मण्य मनुष्य को काम में समय जाता ज्ञात भी नहीं होता। गरमी भी अधिकतर निरुद्यमी और इन्द्रियारामों को ही सताती है। परिश्रमी किसान इन दिनों भी निरन्तर हल जोतने में लगे रहते हैं। कर्तव्य के सामने शरीर-कष्ट का ध्यान नहीं रखना चाहिए।

३—बहुत से मनुष्य ग्रीष्म की गरमी से घबरा उठते हैं, किन्तु ग्रीष्म में गरमी की अधिकता का नियम भी ईश्वर ने संसार की भलाई के लिये ही रक्खा है। यदि ग्रीष्म की

गरमी न हो तो वर्षा बिना अन्न कहाँ से उत्पन्न हो ? अन्न बिना मनुष्य कैसे जीवित रहें ?

४—तुम प्रश्न करोगे कि गरमी पड़ने से वर्षा कैसे होती है ? इस का तात्पर्य यह है कि सूर्य के ताप से ही पृथिवी पर के जलों की भाप बनकर आकाश में उड़ती है और इस भाप से ही मेघ बनकर जल बरसाते हैं, यदि जल की भाप बनकर न उड़े तो मेघ कैसे बनें ? और मेघ बिना, वर्षा हो ही नहीं सकती । अब तुम समझ गये होगे कि, वर्षा के लिये प्रचण्ड गरमी की कितनी बड़ी आवश्यकता है; यही कारण है कि जिस वर्ष ग्रीष्म नहीं तपता उस साल वर्षा भी यथोचित नहीं होती । अपने अपने समय पर सब ऋतुओं का होना अच्छा है ।

५—ग्रीष्म में नदी में स्नान का बड़ा आनन्द रहता है। कार्य के पश्चात् नदी में निमज्जन से शरीर प्रफुल्लित और चित्त शान्त हो जाता है ।

नदी में तैरना भी इस ऋतु में यथेच्छ आ सकता है । तैरने की बड़ी उत्तम कला है । इस से शरीर का व्यायाम भी भली प्रकार हो जाता है और अवसर पड़ने पर चढ़े हुए नदी नद को पार कर जाने का साधन भी मनुष्य को मिल जाता है ।

६-ग्रीष्म में ख़रबूज़े, तरबूज़ और ककड़ी की ख़ूब बहार रहती है। आषाढ़ में आमों की फ़सल भी प्रारम्भ हो जाती है। इस ऋतु में तक्र का सेवन अति-हितकर है।

पाठ २२

वर्षा।

१—आया यह अब वर्षा-काल,
जग का हुआ औ
नहीं कहीं अब हाहाकार।
गर्मी से न व्यथित संसार ॥
२—नहीं लूह अब सन सन चलती।
भूमि आगसी अब नहीं जलती ॥
"प्यास प्यास पानी पानी" नर।
चिल्लाते अब नहीं कहीं पर ॥
३—अब न कहीं पर उड़ती धूल।
मुरझाते न लता, तरु, मूल ॥
रहा न रवि-किरणों का त्रास।
घिरा बादलों से आकाश ॥
बरस रहा जल चारों ओर।
मेंढक सुख से करते शोर।

कहीं पपीहा करता रोर ।
कहीं नाचते प्रमुदित मोर ॥
५—पृथ्वी, खेत, बाग़ बन तरुवर ।
हरे हरे दिखलाते सुंदर ॥
बीर बहूटी की छबि न्यारी ।
आँखों को लगती अति प्यारी ॥
६—झँझा वायु ज़ोर से बहता ।
छिपा बादलों में रवि रहता ।
झड़ी रात दिन की लग जाती, ।
दिन की रजनी हो हो जाती ॥
७—कदम केतकी, फूल फूल अब ।
सौरभ-युत कर देते बन सब ॥
जामुन, निम्बू, पनस, आदि सब ।
धीरे धीरे पकते हैं अब ॥
८—चला रहे हल कहीं किसान ।
कहीं मगन हो बोते धान ॥
कहीं प्रेम से मेंड़ बनाते ।
बैल गाय हैं कहीं चराते ॥
९—मोद-प्रद अतिशय सुख कारी, ।
वर्षा-ऋतु सब को है प्यारी ॥

कृषि प्रधान है देश हमारा ।
हमें इसी से पावस प्यारा ॥

{ श्री पाण्डेय लोचन प्रसाद कृत,
सरस्वती पत्रिका प्रयाग से। }

१—हमारे शरीर भोज[illegible] पुष्ट होते हैं। यदि हम को एक दो दिन भी भोजन न मिले, तो हमारा शरीर निर्बल हो जाता है और हम काम करने के योग्य नहीं रहते । जो भोजन हम खाते हैं, वह प्रथम मुख में चबाया जाकर कण्ठ के मार्ग से हमारे उदर में जाता है उदर में जाकर, पक कर, उस का रस बनता है । उदर में जिस स्थान पर भोजन का रस बनता है, उस को **पक्काशय** कहते हैं ।

२—यदि भोजन को, खाते समय, दाँतों से भले प्रकार चबा लिया जाता है, तो पक्काशय में जाकर सुगमता से पक कर उस का रस बन जाता है और रस से रुधिर बन कर नाड़ियों द्वारा सारे शरीर में घूमता है । रुधिर से ही हमारे शरीर बढ़ते और परिपुष्ट होते हैं ।

३—किन्तु, जो मनुष्य खाते समय भोजन को भले प्रकार नहीं चबाते और उस को वैसे ही शीघ्र २ निगल जाते

हैं, उन के पक्काशय में भोजन का रस बनने में बड़ी कठिनता पड़ती है। बिना चबाए भोजन को पक्काशय यथा-योग्य नहीं पका सकता और उसे पकाने और रस बनाने में उस को अति परिश्रम करना पड़ता है। नित्य प्रति के अति परिश्रम से वह निर्बल हो जाता है और कुछ वर्षों में भोजन के पचाने में असमर्थ हो जाता है। इसी से शीघ्र भोजन करने वाले रोगी और निर्बल बन जाते हैं। **इस लिये शीघ्र भोजन कभी न करना चाहिये, प्रत्युत प्रत्येक ग्रास को कम से कम तीस बार चबा कर निगलना चाहिये।**

४—जिन गुणों वाला भोजन मनुष्य खाते हैं, उन्हीं गुणों वाला रुधिर बन कर उन के शरीर में घूमता है। कई पदार्थों में ऐसे गुण होते हैं कि उन से बना रुधिर शरीर में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न कर देता है; जैसे लाल मिरच और खटाई आदि खाने से शरीर में फुंसी आदि कई रोग हो जाते हैं। बहुत दिनों के रक्खे हुए खट्टे पदार्थ बुद्धि को बिगाड़ देते हैं, इस लिये मनुष्यों को सदा ऐसे पदार्थ खाने उचित हैं जो शरीर को लाभ-दायक हों।

परिपक्क फल मनुष्य के लिये सब से अधिक हितकारी हैं। विविध प्रकार के अन्न जैसे गेहूँ, चना, उड़द, चावल आदि भी भोजन के विशेष पदार्थ हैं, दुग्ध, घृत और मिष्टान्न

भी बलकारी और पुष्टि-दायक वस्तु हैं। भोजन करने में निम्न लिखित बातों का भी ध्यान रखना उचित है।

(क) भोजन शुद्ध और पवित्र होकर अर्थात् हाथ, पैर और मुख धोकर खाना चाहिए।

(ख) भोजन को शुद्ध और स्वच्छ पात्रों में रख कर खाना उचित है। भोजन परसवाने से पूर्व देख लो कि तुम्हारे सामने के पात्रों में मिट्टी वा जूठ आदि तो नहीं लगी; यदि ऐसा हो तो उन को भोजन परसने से पूर्व ही शुद्ध करलो।

(ग) भोजन उस समय ही करना उचित है, जब अच्छी भूख लगी हो। बिना भूख भोजन करने से रोग होजाते हैं। भूख से अधिक कभी नहीं खाना चाहिए। यह भी शरीर को रोगी बना देता है।

(घ) भोजन के समय अपने मन में कोई चिन्ता न रक्खो, प्रसन्नता से खाया हुआ भोजन शरीर को बड़ा लाभ-दायक होता है।

(ङ) जो भोजन मिले उसी पर सन्तोष करो। प्रति-दिन स्वादु भोजन की ही अभिलाषा मत रक्खो। भोजन करने का अभिप्राय पेट भरना है, चटोरपन नहीं।

(च) भोजन पाने पर ईश्वर का धन्यवाद करो; उसी की कृपा से हम को नित्य-प्रति भोजन मिलता है ।

(छ) भोजन करते समय वार्त्तालाप न करो; भोजन में ही ध्यान रक्खो ।

(ज) मुख में का पहला ग्रास जब चबा कर निगल लो, तब दूसरा ग्रास मुख में ले जाओ ।

(झ) भोजन में दोष न निकालो । जो वस्तु तुम को रुचिकर न हो न खाओ ।

(ञ) जो मनुष्य शिष्टाचार-पूर्वक भोजन नहीं करते, वे अशिष्ट समझे जाते हैं और उन को कोई पंक्ति में बैठाना नहीं चाहता ।

पाठ २४

हाथी ।

१—स्थल-चारी जन्तुओं में, हाथी सब से अधिक डील डौल का जन्तु है। उस की आकृति किसी जन्तु से नहीं मिलती । उस का सिर दो गोल पिण्डों से मिल कर बना होता है । उस के कान छाज से चौड़े होते हैं । आँखें

छोटी २ होती हैं, इस लिये वह दूर तक नहीं देख सक्ता; परन्तु उस की श्रवण शक्ति बड़ी प्रबल होती है; वह दूर से कैसे ही धीमे शब्द की आहट सुन लेता है।

२—उस की नाक की आकृति बड़ी विलक्षण होती है। देखो, वह बढ़ कर पैरों तक लटकी हुई है और हाथ और नाक दोनों का काम देती है। उस को शुण्ड वा सूँड कहते हैं। उसे संस्कृत में 'हस्त' कहते हैं, हाथी हाथ का काम उसी से लेता है, इसी लिए हाथी का नाम "हस्ती" है। सूँड़ के अग्र भाग पर एक अंगुली सी होती है; उस से वह सूक्ष्म से सूक्ष्म वस्तु को भी उठा लेता है। सूँड से पकड़ कर ही वह भोजन अपने मुख में लेजाता है और जल भी उसी से पान करता है; वह उस में भर कर एक मशक जल अपने मुख में ले जाता है।

३—हाथी वन्य पशु है; वह सघन जङ्गलों में रहता है। हाथी झुण्ड बांध कर वनों में फिरा करते हैं और वृक्षों की शाखा और पत्र खाकर अपना निर्वाह करते हैं। वनों में चरने के लिए वे दूर दूर निकल जाते हैं, परन्तु बड़े प्रबन्ध और सावधानी से चलते हैं; एक वृद्ध हाथी को आगे कर लेते हैं, यदि आगे मार्ग में कोई भय होता है, तो वह सब को बतला देता है और सारा झुण्ड भाग जाता है।

४– मनुष्य हाथियों को अपने काम के लिए बन से पकड़ लाते हैं। हाथी को पकड़ने की अनेक रीतियाँ हैं। उन में से इस समय अधिक प्रचलित एक रीति यह है कि पालतू हाथियों के झुण्ड बन में ले जाए जाते हैं। उन पर मोटे मोटे रस्सों के फन्दे लिए हुए मनुष्य, जो फन्देत कहलाते हैं, चढ़े रहते हैं, अन्य मनुष्य, वन्य हाथी को बन्दूक आदि से खदेड़ कर पालतू हाथियों के निकट ले आते हैं। पालतू हाथी उस को चारों ओर से घेर लेते हैं और उन पर चढ़े मनुष्य रस्सों के फन्दे वन्य हाथी की ग्रीवा और पैरों पर फेंक कर उस को फान्द लेते हैं। फान्द के रस्सों के दूसरे सिरे पालतू हाथियों की गरदनों में बन्धे रहते हैं और वे उस फन्दे हुए हाथी को चारों ओर से घेरे हुए अपने पड़ाव पर ले जाते हैं।

५– वहाँ लाकर उस को किसी भारी और दृढ़ वृक्ष से बाँध कर डाल देते हैं। कुछ दिनों वह इसी अवस्था में पड़ा रहता है; फिर विवश होकर मनुष्यों से हिल जाता है और उस से सवारी आदि का कार्य लेने लगते हैं। शनैः शनैः वह अपने रक्षक का बड़ा आज्ञाकारी बन जाता है; फिर उस के न रस्सा बाँधने की आवश्यकता रहती है, न ऊँट की भांति उस के नकेल ही डालनी पड़ती है।

देखो ! इतने बड़े डील डौल के जन्तु को उस से कितना छोटा मनुष्य बुद्धि के बल से अपने वश में कर लेता है। बुद्धि का बल शरीर के बल से कहीं बड़ा है।

६– हाथी मनुष्य के अनेक काम करता है । राजा महाराजा उस पर सवारी करते हैं, उस पर बैठ कर वे सिंह का आखेट करते हैं । सिंह इतने ऊँचे पर बैठे हुए उन पर आक्रमण नहीं कर सकता । हाथी बड़े २ बोझे भी ढोता है और तोप खींचता है ।

७– यह बड़ा बुद्धिमान् जन्तु है; इस की बुद्धिमत्ता की बहुत सी कथाएँ प्रचालित हैं । उन में से एक अगले पाठ में लिखी जाती है ।

पाठ २५

हाथी और दर्ज़ी ।

१– हाथी स्नान से बड़ा प्रेम रखता है । एक हाथी एक दर्ज़ी की दूकान के आगे से नित्य प्रति स्नान करने जाया करता था । वह दर्ज़ी उस की सूँड में प्रति दिन रोटी के टुकड़े दे दिया करता था । हाथी को ऐसा अभ्यास पड़ गया था, कि वह जब उस की दूकान के सामने आता, तब ही

उस दूकान की खिड़की में रोटी के लिये अपनी सूँड अन्दर ले जाता था ।

२—एक दिन, जब उस ने खिड़की में सूँड डाली, दर्ज़ी ने उस की सूँड में रोटी देने के स्थान में एक सूई चुभो दी । हाथी बेचारा उस समय तो सूई चुभने की पीड़ा को चुपचाप सहन करके चला गया, किन्तु उस दर्ज़ी की दुष्टता को वह भूला नहीं ।

३—नदी से स्नान कर के वापस आते समय हाथी अपनी सूँड में कीचड़ मिला जल भरे लाया और दर्ज़ी की दूकान के सामने पहुँच कर और अपनी सूँड पूर्व-वत् खिड़की में ले जाकर, उस ने वह सारा मैला जल वस्त्रों पर उलट दिया । दर्ज़ी उस समय बड़े बड़े बहु-मूल्य वस्त्र सी रहा था; वे सब कीचड़ से लतपत हो गये ।

४—तब दर्ज़ी अपने किये पर बहुत पछताया, किन्तु अब उस के पछताने से क्या हो सकता था । यदि वह उस निरपराधी हाथी को पूर्व ही न सताता, तो उस को इतनी हानि न उठानी पड़ती ।

इस कथा से हम को भी यही शिक्षा मिलती है कि यदि हम किसी का अपकार करेंगे तो वह भी

उस के बदले में हम को हानि पहुँचाएगा, जैसा कि उस हाथी ने दर्ज़ी को हानि पहुँचाई; इस लिये हमें किसी को सताना नहीं चाहिए।

पाठ २६

विक्रमादित्य और उन का संवत्।

१—महाराजा विक्रमादित्य भारतवर्ष के बड़े प्रसिद्ध और धर्मात्मा राजा हुए हैं। यद्यपि उन को हुए उन्नीस सौ पैंसठ १९६५ वर्ष बीत गये, तथापि उन का नाम अब भी घर घर सुनाई देता है। उज्जयिनी नगरी उन की राज-धानी थी। उज्जयिनी मालवा देश में अब भी प्रसिद्ध नगरी है, पर अब उस की महाराजा विक्रमादित्य के समय की सी शोभा नहीं रही है।

२—महाराज विक्रम बड़े न्यायी और परोपकारी थे। वे अपनी प्रजा को पुत्रों के समान पालते थे। वे प्रजा से जो कर लेते थे, उस को प्रजा की भलाई में ही व्यय करते थे; उस को अपने सुख भोग में कभी नहीं लगाते थे। इतने बड़े महाराज होने पर भी वे नित्य चटाई पर सोते थे और शिप्रा नदी से अपने हाथ से जल का तूँबा भर लाते थे।

अधिक सुख भोग की सामग्री वे कभी अपने समीप नहीं रखते थे ।

३—वे महापराक्रमी और वीर थे। उन के समय में भारतवर्ष पर पश्चिम की ओर से शक जाति ने आक्रमण किया था। उस को उन्हों ने विजय कर के भारतवर्ष से निकाल दिया था। तब से उन का नाम **शकारि** भी प्रसिद्ध है।

४—उन के समय में विद्या का बड़ा प्रचार हुआ; इस का कारण यह है कि वे विद्वानों का बड़ा सत्कार करते थे और अपने यहाँ उन को आश्रय देते थे। उन्हों ने अपने यहाँ नौ विद्वानों की एक सभा बना रक्खी थी और उस का नाम **नवरत्न** प्रसिद्ध किया था, उसी नवरत्न सभा के महाकवि **श्री कालिदास** भी एक रत्न थे। उन्हों ने **रघुवंश** आदि उत्तम काव्य बनाये हैं। संस्कृत का कोई ही ऐसा विद्यार्थी होगा जिस ने कालिदास के रघुवंश को न पढ़ा हो।

५—महाराजा विक्रमादित्य का संवत् अब तक प्रचलित है। घटनाओं का समय जानने के लिये संवत् लिखा जाता है, जैसे हम को यह जानना है कि गुरुकुल कब स्थापित हुआ। गुरुकुल के स्थापन होने के समय को किसी पूर्व काल

की बड़ी घटना से गिन कर हम यह ठीक जान सकते हैं। जब गुरुकुल स्थापित हुआ था, तब महाराजा विक्रमादित्य को राज-सिंहासन पर बैठे १९५८ वर्ष हुए थे, वा इस को इस प्रकार भी कहते हैं कि उस समय १९५८ विक्रमीय संवत् था और अब इस समय १९६५ विक्रमीय संवत् है। सं० १९५८ से १९६५ तक सात वर्ष होते हैं, इस से ज्ञात हुआ कि गुरुकुल को स्थापित हुए सात वर्ष हुए।

६—इस प्रकार हम नित्य होने वाली घटनाओं पर तिथि सहित संवत् लिखते रहते हैं और जब कभी हम को किसी घटना का समय जानना होता है, तब ही उस घटना का लिखा हुआ संवत् देख कर और उस से वर्तमान संवत् तक गिन कर जान लेते हैं कि, उस को इतना समय हुआ।

७—संवत् किसी बड़ी घटना, जैसे किसी महात्मा के जन्म-दिन वा राज्याभिषेक से चलाया जाता है। विक्रमी संवत् महाराजा विक्रमादित्य के राज्याभिषेक से माना जाता है; वह चैत्र के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को प्रारम्भ होता है। इस देश में ईसा आदि और कई महानुभावों के भी संवत् प्रचलित हैं; परन्तु आर्य्यों में आर्य्य राजा महाराज-विक्रम के ही संवत् का व्यवहार होता है।

पाठ २७

रेलगाड़ी ।

१—रेलगाड़ी को तुम ने कई बार देखा होगा; तुम ने यह भी देखा होगा कि उस में सब से आगे इंजन लगा रहता है। इंजन ही सब गाड़ियों को खींच कर ले जाता है। इंजन में यह शक्ति कहाँ से आती है? यह सब भाप की शक्ति है। इंजन के एक भाग में तीव्र अग्नि जलती रहती है और उस के ऊपर एक स्थान में बहुत सा जल भरा रहता है। अग्नि पर जल के खौलने से भाप उत्पन्न होती है—इसी भाप के बल से इंजन सारी ट्रेन को खींच कर ले जाता है।

२—एक इंजन में चालीस से पचास तक माल और मुसाफ़िरों से भरी हुई गाड़ियाँ खींच कर ले जाने की शक्ति होती है, किन्तु इतने भारी बोझ को खींचने में रेल की सड़क भी एक कारण होती है। रेल की सड़क पर लोहे की पटरियाँ बिछी रहती हैं, इन्हीं को रेल कहते हैं। रेलों पर ही इंजन और गाड़ियों के पहिये चलते हैं और थोड़े धक्के से दूर तक लुढ़के चले जाते हैं। रेलों पर चलने से पहिये भूमि में नहीं धँसते; सामान्य भूमि पर इंजन इतने बोझ को कदापि नहीं खींच सकता।

३–इंजन आगे पीछे दोनों ओर चल सकता है और जहाँ आवश्यकता हो ठहराया जा सकता है। इंजन के भीतर बहुत से यन्त्र लगे रहते हैं, वे ही भाप की शक्ति से घूमकर इंजन को चलाते हैं। उस में एक यन्त्र इस प्रकार का होता है कि उस से जल, अग्नि और भाप की शक्ति की न्यूनाधिकता का ज्ञान होता रहता है और आवश्यकतानुसार उस में जल आदि और भर दिया जाता है।

४–रेल से संसार को बड़े लाभ पहुँचे हैं। पूर्व समय में, जहाँ जाने में महीने लगते थे, वहाँ अब रेल से घंटों में पहुँच जाते हैं। रेल से माल भेजने में बड़ा सुभीता हो गया है। इस से व्यापार में बड़ी उन्नति हुई है। जिन स्थानों की वस्तुएँ मार्ग की कठिनता और अधिक समय लगने के कारण दूसरे स्थानों में नहीं पहुँच सकती थीं, वे रेल की सहायता से सारे संसार में फैल गई हैं। यदि किसी फ़सल में कहीं अन्न उत्पन्न न हो, तो अब अन्न के अभाव से वहाँ की प्रजा भूखी नहीं मरती, रेल द्वारा लाखों मन अन्न दूसरे देशों से वहाँ पहुँच जाता है।

—:०:—

पाठ २७

शरद्–हेमन्त और शिशिर ।

१–वर्षा के पश्चात् जाड़ा आता है । आश्विन से लेकर फाल्गुन तक जाड़ा होता है। प्रथम आश्विन और कार्त्तिक के महिनों में थोड़ा शीत होता है और इन दो मासों को शरद् ऋतु कहते हैं । शरद् ऋतु में नदी घट जाती हैं, आकाश स्वच्छ और निर्मल हो जाता है; अतएव चन्द्र और ताराओं का प्रकाश इस ऋतु में अति उज्ज्वल और शोभनीय होता है । जलाशयों में खिले हुए कमलों की अपार शोभा होती है । फूले हुए कास का दृश्य बड़ा मनोहर होता है । इन्हीं दिनों ईख पक कर अपनी बहार दिखाती है ।

२–शरद् के अनन्तर मार्गशीर्ष और पौष के मास हेमन्त ऋतु कहलाते हैं । हेमन्त में भरपूर शीत पड़ता है । सायं प्रातः शीत की अधिकता से हाथ पैर सुकड़े जाते हैं । आलसी मनुष्य लिहाफ़ बिछौने से हाथ पाँव बाहर नहीं निकालना चाहते, किन्तु कर्म्म-परायण पुरुषों को इस समय भी अपने कर्तव्य का ध्यान रहता है ।

३–हेमन्त के पश्चात् माघ और फाल्गुन मासों में शिशिर-ऋतु होती है । इस ऋतु में भी पूर्ण शीत पड़ता है, हेमन्त

और शिशिर के लक्षणों में कोई विशेष भेद नहीं है। इन दोनों ऋतुओं में हिम अत्याधिकता से पड़ता है। ऊँचे २ पर्वत हिम से ढक जाते हैं। वे धूप के समय दूर से बड़े सुन्दर देख पड़ते हैं। शीत प्रधान देशों में नदियाँ हिम की अधिकता से जम जाती हैं और ऐसी कठोर हो जाती हैं कि मनुष्य उन पर चलने फिरने लगते हैं। उन देशों के कुंज आदि कई पक्षी उन दिनों शीत की आधिकता के कारण उन देशों को छोड़ कर भारतवर्ष आदि उष्ण देशों में चले आते हैं और हेमन्त और शिशिर भर यहाँ रह कर वसन्त में फिर अपने देश को लौट जाते हैं।

४—हेमन्त और शिशिर में दिन छोटे और रात्रि बड़ी होजाती हैं। इस लिये दिन में थोड़ा समय मिलने के कारण बहुत से काम रात्रि में किये जाते हैं। विद्यार्थी रात्रि में अपने पाठ स्मरण करते हैं। विद्यानुरागी विद्यार्थी रात्रि में परिश्रम करके अपना पहला पढ़ा हुआ भी स्मरण कर लेते हैं।

५—इन ऋतुओं में नारंगियों की बहार आती है। सेब, अंगूर और बादाम आदि भी इन्हीं दिनों काबुल से आते हैं। शीत में बादामों का सेवन शरीर को लाभदायक है। शीत काल में वैसे भी मनुष्यों का स्वास्थ्य अच्छा रहता है।

पाठ २८

शरद्।

[१]

देखो कैसी शरद् सुहाई,
अद्भुत सुन्दरता ले आई।
किस को नहीं लुभाती है यह,
किस का चित न चुराती है यह।

[२]

देखो तो खेतों के भीतर,
मक्का, ज्वार, बाजरा, सुन्दर।
पका शालि लहराता शुभतर,
कृषक-हृदय में मोद रहा भर॥

[३]

आती उड़ उड़ वहाँ शुकाली,
जिस की शोभा निपट निराली।
उसे उड़ाते दे दे ताली,
जो जन करते हैं रखवाली।

[४]

शोभा देते खूब सरोवर,
सरसीरुह खिल रहे मनोहर ।
गूँज रहे मतवाले मधुकर,
श्रवण-सुखद रव हंस रहे कर ।

[५]

हुआ कास विकसित अति सुन्दर,
सारस बोल रहे हैं सुख-कर ।
मृदु मृदु कूज रहे पक्षी-वर,
उतरे हैं खञ्जन पृथ्वी पर ।

[६]

हुआ प्रकृति का निर्मल जीवन,
स्वच्छ गम्य सब पन्थ गये बन ।
विमल व्योम में छिटके तारे,
प्रमुदित हुए ज्योतिषी सारे ।

[७]

निर्मल चन्द्र-चन्द्रिका छाई,
जो चकोर-लोचन-सुखदायी ।
करता सिन्धु गर्जना भारी,
छटा ज्वार-भाटे की न्यारी ।

[८]

अच्छे, स्वच्छ, सर्वदा रहना,
कल कल व्यर्थ कदापि न करना।
जड़ उखाड़ना नहीं किसी की,
यही नीति अब हुई नदी की।

{ पं० श्रीगिरिधर शर्म्मा कृत }
{ सरस्वती पत्रिका, प्रयाग से }

पाठ ३०

व्यवसाय ।

१—प्रत्येक मनुष्य को जीवन निर्वाह के लिये भोजन, वस्त्र और गृह की आवश्यकता पड़ती है; परन्तु भोजन और वस्त्र आदि बनाने में बहुत से काम करने पड़ते हैं; जैसे भोजन के लिये अन्न उत्पन्न करना पड़ता है। अन्न भूमि को जोतने बोने से उत्पन्न होता है। भूमि को जोतने बोने के लिये औज़ार चाहिएँ। फिर औज़ार बनाने वालों की आवश्यकता है; ऐसे ही वस्त्रों के लिये वस्त्र बुनने और सीने वालों की आवश्यकता पड़ती है।

२—क्या तुम्हारी समझ में ये सब काम कोई एक मनुष्य कर सकता है। यदि कोई एक मनुष्य इन सब कामों

को स्वयं ही करने लगे, तो उस से अपने जीवन भर में एक काम भी पूरा न हो सकेगा, और उस को भोजन वस्त्र भी मिलना असम्भव हो जावेगा। इस लिये मनुष्यों ने इन कामों को आपस में बाँट लिया है और वे एक एक काम को बड़ी सुगमता से करते हैं। उसी एक एक काम को दूसरों के लिये करके और उन से उस का वेतन लेकर वे अपना निर्वाह भी करते हैं।

३—कोई मनुष्य लोहे के औज़ार ही बनाता है और वह **लोहार** कहलाता है। कोई लकड़ी का ही काम करता है; वह **बढ़ी** कहलाता है। जो भूमि को जोत बो कर अन्न उत्पन्न करते हैं, वे **किसान** कहलाते हैं। ऐसे ही कपड़ा बुनने वाले **जुलाहे**, कपड़ा सीने वाले **दर्ज़ी**, चर्म का कार्य्य करने वाले **चमार**, गृह बनाने वाले **राज** और रोगियों की चिकित्सा करने वाले **वैद्य** कहलाते हैं।

४—इसी प्रकार संसार में सैकड़ों कार्य्य हैं, जो मनुष्य अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार करने लगे हैं। ये सब पृथक् २ व्यवसाय कहलाते हैं। पृथक २ व्यवसायों से संसार का काम सुख-पूर्वक चला जाता है। जो मनुष्य जिस काम को स्वयं नहीं कर सकता, वह उस को उस के व्यवसायी से

वेतन देकर सुगमता से करा लेता है। इस प्रकार स्वयं अपने व्यवसाय में उस को कुछ कष्ट नहीं पड़ता।

५—पृथक् पृथक् व्यवसाय करने वालों को अपने अपने व्यवसाय में उन्नति करने का भी अच्छा अवसर मिलता है, और वे अपने २ व्यवसाय में विविध प्रकार के आविष्कार और उन्नति करते रहते हैं।

६—हमारे वेद शास्त्रों में मुख्य मुख्य विविध व्यवसायों के अनुसार ही मनुष्य चार वर्णों में बाँटे गये हैं। जो यज्ञ कराते, विद्या पढ़ाते और उपदेश देते हैं, वे **ब्राह्मण** कहलाते हैं। राज्य करने वाले और दुष्टों से संसार की रक्षा करने वाले **क्षत्रिय** होते हैं। खेती और व्यापार आदि विविध प्रकार के व्यवसाय करने वाले **वैश्य** वर्ण में गिने जाते हैं और सेवा करने वाले **शूद्र** कहाते हैं। **हम को सब व्यवसायियों का आदर करना चाहिए।**

पाठ ३१

धातु ।

१—धातु स्वच्छ और चमकीले होते हैं, किन्तु उन में दर्पण की न्याई वारपार नहीं देख सकते, अर्थात् धातु

पारदर्शी नहीं होते। वे अन्य वस्तुओं से भारी होते हैं, उन में एक गुण यह होता है कि, वे कूटने से बढ़ कर चौड़े और चपटे हो जाते हैं; मिट्टी वा पाषाण के समान वे कूटने से टुकड़े २ नहीं हो जाते। वे अग्नि में पिघल जाते हैं; लकड़ी के सदृश जलते नहीं। उन का तार खींचा, तो बहुत लम्बा तार खिंच सक्ता है।

धातु पृथिवी में से खोद कर निकाले जाते हैं। जिस स्थान से वे खोदे जाते हैं उन को खान वा खानि कहते हैं। खनि से निकलने के कारण धातुओं को खनिज भी कहते हैं। धातु बहुत प्रकार के होते हैं। उन में से कई बहुत कम मिलते हैं; इस लिये वे बहुमूल्य होते हैं। मुख्य २ धातुओं के नाम और उन का संक्षिप्त वर्णन नीचे लिखा जाता है।

१—सोना वा सुवर्ण सब धातुओं में बहुमूल्य और शोभनीय होता है। उस का वर्ण गहरा पीला और चमकीला होता है। सुवर्ण के तुल्य भारी प्रायः और कोई वस्तु नहीं है। वह जल से भी उन्नीस गुणा भारी होता है। उस के सावरन और मुहर और अनेक आभूषण बनाए जाते हैं। सुवर्ण को कूट कर उस के पत्र ऐसे पतले बनजाते हैं कि वे फूँक मारने से उड़ जाते हैं; वे औषध के काम में आते हैं।

४–चाँदी वा रजत श्वेत और चमकीली होती है। उस के रुपये, अठन्नी, चोअन्नी और दोअन्नी बनती हैं। चान्दी बहुत दूर से आती है।

५–ताम्र वा ताँबा लाल होता है। उस के पैसे और पात्र बनते हैं

६–पीतल मिश्रित धातु है। वह ताँबा और जस्त के मेल से बनता है और उस का वर्ण सुवर्ण के सदृश पीत और चमकीला होता है। पीतल के पात्र और घंटे बनाये जाते हैं

७–लोह वा लोहा बड़ा दृढ़ और उपयोगी धातु है। वह देखने में सुन्दर नहीं होता, किन्तु वह सब धातुओं से अधिक हमारे काम आता है। तुम अपने गृह में जो सामग्री देखते हो, वे अधिकांश लोहे के यन्त्रों से बनीं हैं। फावड़े, हलों के अग्र भाग, चाकू, छुरे और अन्य सब यन्त्र लोहे के ही बनते हैं। लोहे को बार बार अग्नि में तपा कर फ़ौलाद बनाया जाता है। खड्ग आदि शस्त्र फ़ौलाद के ही बनते हैं।

८–सीसा नरम और भारी होता है। वह अग्नि में सुगमता से पिघल जाता है। बन्दूक़ की गोली और छर्रे सीसे के ही बनते हैं।

९–संसार में और भी अनेक धातु हैं। जब किसी धातु की कोई वस्तु बनानी होती है, उस को प्रचण्ड अग्नि में तपा कर लाल कर लेते हैं। लाल हो कर वह कोमल हो जाती है और उस अवस्था में उस को पीट कर उस की जैसी चाहें वैसी आकृति बना लेते हैं।

१०–दूसरी क्रिया यह भी की जाती है कि, धातु को पिघला कर तरल कर लेते हैं, और उस को जैसे साँचे में चाहें ढाल लेते हैं; शीतल हो कर वह उसी आकृति में दृढ़ हो जाती है।

पाठ

बलदेव की वीरता।

१–बलदेव की अवस्था केवल पन्द्रह वर्ष की थी। उस का घर यमुना के तट पर एक ग्राम में था। एक दिन सायं-काल को वह यमुना के पुल पर भ्रमण करने गया। वहाँ जाकर उस ने देखा कि पुल पर से जाते हुए एक सवार को उस के घोड़े ने यमुना में गिरा दिया। बलदेव कुछ २ तैरना जानता था।

२—सवार को गिरता देखते ही उस ने अपना भ्रमण का आनन्द त्याग दिया और बहुत से मनुष्यों के देखते २, जो तट पर खड़े उस सवार को डूबने से बचाने का उपाय सोच रहे थे, वह वस्त्रों समेत यमुना में कूद पड़ा और तैर कर डूबते हुए सवार को तट पर खींच लाया।

३—कुछ दिनों पश्चात् एक कन्या स्नान करती हुई उसी नदी की लहरों में बह चली। बलदेव उस को देखते ही भागा और तैर कर उस को भी नदी में से बाहर निकाल लाया। कन्या के माता पिता और वह कन्या स्वयं बलदेव के आयु भर कृतज्ञ रहे और उसका यश सारे संसार में फैल गया।

४—बलदेव का चित्त स्वयं सन्तोष और शान्ति से भरपूर था कि उस ने दो मनुष्यों की जान बचाई। बलदेव की कथा से हम को भी कई शिक्षा मिलती हैं, प्रथम यह कि **मनुष्य की जीवन-रक्षा के आगे हम को अपने जीवन को भी तुच्छ समझना चाहिए,** यदि बलदेव अपने जीवन को तुच्छ समझ कर नदी में न कूद पड़ता तो वह दो जीवों की रक्षा करने में कदापि समर्थ न होता। दूसरी शिक्षा यह मिलती है कि **ऐसे समय में सोच विचार में पड़ कर कार्य्य अपने हाथ से निकल जाता है।** यदि सोच विचार में पड़ कर, बलदेव नदी में

कूदने में तनिक भी विलम्ब कर देता तो सवार और कन्या कभी के डूब कर मर जाते और तब उस का उद्योग निष्फल ही जाता।

८—तीसरी शिक्षा यह मिलती है कि दूसरों का उपकार कर के चित्त में अकथनीय सन्तोष और हर्ष होता है जैसा कि बलदेव का चित्त उस समय हर्ष और सन्तोष से भर गया था, परोपकारी का संसार में यश होता है, इस लिये हम को, जब कभी बन पड़े दुखियों को दुख से बचा कर उन का उपकार करना चाहिए।

पाठ ३३

पढ़ना लिखना।

१—पढ़ना लिखना संसार के लिये बड़ा उपयोगी है। लिख कर हम अपने मन के भाव अन्यों पर प्रकट कर सकते हैं और अन्यों के मन के भाव उन का लेख पढ़ कर स्वयं जान सकते हैं। सब बातें हम को सदा स्मरण नहीं रह सकतीं। उन को हम लिख कर रख लेते हैं और जब चाहें उन को पढ़ कर और अपने मन में लाकर उन से अपना काम निकाल लेते हैं। लेख द्वारा हम अपने मन के अभिप्राय

सहस्रों मील दूर बैठे हुए मनुष्यों तक पहुँचा सकते हैं । यदि लेखन क्रिया न होती, तो अपने अभिप्राय कहने के लिये हम को स्वयं उन के निकट उतनी दूर जाना पड़ा करता ।

२—लेख द्वारा ही सहस्रों वर्ष पूर्व के विद्वानों की वार्ता हम सुन सकते हैं ।

उन की विद्वत्ता और कलाकौशल, उनकी वीरता और उन के हर्ष और विषाद से भरे वृत्तान्त और उन की सुवक्तृता और सदुपदेश उन की लिखित पुस्तकों से हम को वैसे ही सुनाई देते हैं जैसे कि उन के मुख से सुनते । इस लिये प्रत्येक मनुष्य को लिखना पढ़ना अवश्य सीखना चाहिए ।

३—पढ़ते समय उच्चारण पर पूरा ध्यान रखना चाहिए । न अति शीघ्र ही पढ़ना चाहिए, न रुक रुक कर पढ़ना उचित है । न बहुत चिल्ला कर पाठ करना चाहिए, न इतना धीरे ही कि सुनने वाले को कठिनता से सुनाई देवे ।

स, श, ष और न, ण, का उच्चारण विस्पष्ट करना चाहिए । ह्रस्व, दीर्घ, अनुस्वार और चन्द्र विन्दु को देख कर उन का शुद्ध उच्चारण करना चाहिए ।

४—कोई २ विद्यार्थी गाते हुए से पढ़ते हैं, कोई ऐसे पढ़ते हैं जैसे पढ़ते हुए दाँतों में कोई वस्तु पकड़ रक्खी हो, कोई पीछे के शब्द पर बल दे कर पढ़ते हैं, ये सब बड़े दोष हैं । इन

से सदा बचना चाहिए और इस प्रकार पढ़ना चाहिए कि सुनने वाले को एक एक शब्द विस्पष्ट सुनाई देवे ।

५—पाठ में जहाँ २ विराम चिह्न लिखे मिलें, वहाँ वहाँ नियमानुसार रुकना चाहिए । जहाँ अल्प विराम (,) मिले वहाँ थोड़ा ठहरना चाहिए. जहाँ अर्द्ध विराम (;) हो वहाँ उस से अधिक और जहाँ पूर्ण विराम (।) हो, वहाँ और भी अधिक ठहरना उचित है । जहाँ प्रश्न पूछा जाता है वहाँ यह (?) प्रश्न-सूचक चिह्न बनाया जाता है और जहाँ कोई आश्चर्य्य की बात होती है वहाँ यह (!) आश्चर्य्यसूचक चिह्न लिखा जाता है । सम्बोधन सूचक चिन्ह भी इसी प्रकार (!) होता है । इन चिन्हों पर भी रुकने का नियम है ।

६—लिखने में सब को और विशेष कर विद्यार्थियों को ऐसे अक्षर बनाने चाहिएं कि, उन को पढ़ने वाला सुगमता से पढ़ सके । बहुधा विद्यार्थी शीघ्र लेखक बनने की धुन में अपना हाथ पहले ही बिगाड़ लेते हैं और फिर बड़ी अवस्था में उन का लेख नहीं सुधरता,। विद्यार्थियों को उचित है कि वे सुडौल अक्षर बनाने का अभ्यास करें; यदि उन का हाथ अब सुडौल अक्षरों पर जम गया, तो वे बड़े होकर सुलेखक और शीघ्र लेखक दोनों बन सकेंगे । अच्छी लिपि मनोहर पुष्पलता के समान सब के मन भाती है ।

पाठ ३४

यवक्रीत की कथा ।

१—भरद्वाज मुनि गङ्गा तट पर वास करते थे । उन के पुत्र यवक्रीत थे; यवक्रीत ने वेद जानने के लिये घोर तप किया । एक दिन राजा इन्द्र ने आन कर उस से पूछा कि तुम किस कारण तप कर रहे हो । यवक्रीत ने उत्तर दिया "महाराज ! मैं यह चाहता हूँ कि मुझ को बिना पढ़े ही सब वेद आजावें; इसी लिये मैं यह घोर तप कर रहा हूँ कि ईश्वर मेरे तप से ही प्रसन्न होकर मेरे हृदय में सारी विद्याओं का ज्ञान दे देवे; क्योंकि वेदों को गुरु मुख से पढ़ने में बहुत समय लगता है" ।

२—यह सुन कर राजा इन्द्र ने कहा—"यह बात असम्भव है, गुरु से पढ़े बिना कोई विद्या नहीं आ सकती । जाओ गुरु से पढ़ो "इतना कह कर इन्द्र चले गये ।

परन्तु यवक्रीत ने तप करना नहीं छोड़ा ।

३— इस प्रकार उस को फिर तप करते हुए देख, इन्द्र ने पुनः आकर उस को रोका और कहा- "तुम अपने गुरु से वेद पढ़ो, तब उन का अर्थ जान सकोगे" । यवक्रीत ने उत्तर दिया " हम अपने तप से ईश्वर को प्रसन्न करके बिना

पढ़े ही वेद जानना चाहते हैं; यदि ईश्वर ने हमारे हृदय में वैसे ही वेद का ज्ञान न दिया तो हम तप करते करते यहीं मर जायँगे" ।

४– राजा इन्द्र ने देखा कि यह समझाने से नहीं समझता, अब कुछ और उपाय करना चाहिए। इन्द्र तपस्वी का वेष बना कर, गङ्गा के किनारे, जहाँ यवक्रीत नित्य स्नान करने आता था, जा बैठे। जब यवक्रीत स्नान करने आता था, इन्द्र उस के सामने रेणुका की मुट्ठी भर भर कर गङ्गा में डालने लगते। उस को इन्द्र का यह व्यापार देख कर बड़ा आश्चर्य्य हुआ और उस ने इन्द्र से पूछा "ब्राह्मण! तुम यह क्या करते हो"?

५–इन्द्र ने कहा, "इस नदी के पारजाने में पथिकों को कष्ट होता है, इस लिये इस को रेणुका से आटना चाहता हूँ; तब यहाँ से आने जाने वालों के लिये अच्छा मार्ग बन जायगा"। यवक्रीत ने कहा- "तुम गङ्गा के वेग को मुट्ठी २ रेणुका से कैसे रोक सकोगे? इस न होने योग्य कार्य्य को छोड़ कर होने योग्य कार्य्य में लगो"।

६– इन्द्र ने उत्तर दिया, "जिस प्रकार तुम ने न होने योग्य कार्य्य को आरम्भ किया है, उसी प्रकार हम ने भी

यह कार्य्य प्रारम्भ किया है"। यह सुन कर यवक्रीत ने कहा "कि जैसा तुम्हारा काम निरर्थक है यदि वैसा ही मेरा काम भी निरर्थक है तो मैं आज से अपनी शक्ति के अनुसार कार्य्य करूंगा"। इन्द्र ने कहा "तुम अब अपने गुरु से जा कर विद्या पढ़ो तुम बड़े विद्वान् पण्डित हो जाओगे" यवक्रीत ने वैसा ही किया और वह बड़ा पण्डित बन गया।

७– इस कथा से हम को यही शिक्षा मिलती है कि **विद्या बिना पढ़े और परिश्रम किये किसी को नहीं आ सक्ती और वह धीरे धीरे ही आती है। एक क्षण में वह किसी को नहीं प्राप्त होती।**

(बाल भारत से, परिवर्त्तित)

पाठ ३९

वस्त्र।

१– पशुओं के शरीर पर बाल होते हैं। पक्षियों के शरीर पर भी रोम और पंख होते हैं। मछलियों के देह पर शल्क होते हैं। इस लिये उन सब को अपने शरीरों को शीत और उष्णता से बचाने के लिये किन्हीं वस्त्रों की आवश्यकता नहीं है।

२— किन्तु मनुष्य के शरीर पर केवल कोमल और पतली त्वचा ही है। इस लिये उस को अपने शरीर को शीत और उष्णता से बचाने के लिये वस्त्रों की आवश्यकता पड़ती है; मनुष्य को ईश्वर ने बुद्धि भी दी है और वह अपनी बुद्धि के बल से अपने शरीर को ढाँपने के उपाय निकाल सक्ता है। वह भिन्न देशों की शीत उष्णता के अनुसार, जहाँ २ वह रहता है अपने वस्त्र भी बना सकता है।

३—उष्ण देशों के मनुष्य रुई के वस्त्र पहनते हैं, रुई के वस्त्र हल्के और ठंडे होते हैं और उष्ण देशों में उपयोगी होते हैं। रुई का वर्णन तुम पीछे पढ़ आये हो।

४—शीत-प्राय देशों के वासी ऊन के वस्त्र धारण करते हैं। ऊन भेड़ों और बकरियों के बालों से बनती है। उन के शरीर पर के बाल जब बढ़ जाते हैं, और ग्रीष्म ऋतु आती है, तब कतर लिये जाते हैं और उन को तूम कात कर उन के वस्त्र बुन लिये जाते हैं। ऊन के कम्बल, फ़लालेन, क़ालीन आदि बहुत प्रकार के वस्त्र बनते हैं। काशमीर की बकरियों की ऊन बड़ी बहुमूल्य होती है, उस के शाल बनते हैं।

५—अत्यधिक शीतल देशों में रोम सहित चर्म्म के वस्त्र

भी पहने जाते हैं। भारतवर्ष में भी हरिन और सिंह के चर्म्म बिछाने के काम में लाये जाते हैं।

६–कई वृक्षों की छाल के तन्तुओं के भी वस्त्र बनाये जाते हैं; ये सन सनी और जूट हैं। ये वृक्ष हरे ही उखाड़ कर कुछ समय तक जल में डाले रक्खे जाते हैं। जब वे सड़ने लगते हैं, वहाँ से निकाल लिये जाते और उन के प्रकाण्डों से छाल पृथक् करली जाती है। फिर छाल को कूट कर उस में से तन्तु निकाले जाते हैं और उन तन्तुओं के वस्त्र बुने जाते हैं।

७–वस्त्र बहुत प्रकार के बनाये जाते हैं। भिन्न २ देशों में भिन्न २ प्रकार के वस्त्र पहने जाने की प्रथा है। इस समय भारतवर्ष में कुरता, कोट, धोती, पाजामा, पगड़ी, टोपी आदि वस्त्र धारण किये जाते हैं। देशों का पहरावा बदलता रहता है। पहले इस देश में और ही प्रकार का पहरावा था। स्वदेश की प्रचलित प्रथा के अनुसार ही मनुष्यों को वस्त्र पहनने पड़ते हैं। किन्तु वस्त्रों में अधिक टीप टाप और शोभा पर बहुत व्यय करना व्यर्थ है। शरीर की रक्षा ही वस्त्र-धारण का मुख्यप्रयोजन होना चाहिए; इस लिये वस्त्रों के नवीन नवीन प्रकार निकालने से कोई लाभ नहीं है।

—:०:—

पाठ ३६

शरीर-रक्षा ।

[१]

शरीर ही के हित काम सारे ।
शरीर ही से सुख हैं हमारे ॥
आत्मा नहीं धार्य बिना शरीर ।
जैसे बिना पिञ्जर बद्धकीर ॥

[२]

शरीर से पुण्य, परोपकार ।
शरीर ही है गुण का अगार ॥
शरीर ही है सुर-लोक द्वार ।
शरीर ही से सुविचार सार ॥

[३]

शरीर ही से पुरुषार्थ चार ।
शरीर की है महिमा अपार ॥
शरीर-रक्षा पर ध्यान दीजै ।
शरीर सेवा सब छोड़ कीजै ॥

{ पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदीकृत, सरस्वती से }

पाठ ३७

शौच ।

१—यदि हम आरोग्य रहना चाहते हैं, तो हम को शुचि और पवित्र रहना चाहिए। शौच से पूरा लाभ तब ही हो सकता है, जब कि हमारे शरीर, वस्त्र, और निवास स्थान शुचि रहें।

२—शरीर को स्वस्थ रखने के लिये उस को दिन में कई बार धोना उचित है। शरीर के छिद्रों में से पसीने से मैल निकलता रहता है। यदि शरीर को धोया न जाय तो उस के छिद्र मैल से बन्द हो कर उस में कई प्रकार के रोग हो जाते हैं और रोगी रहने से मनुष्य का जीवन शीघ्र ही समाप्त हो जाता है। इस लिये सब मनुष्यों को प्रतिदिन शीत ऋतु में एक बार और ग्रीष्म में दो बार शरीर को भली प्रकार, मल कर स्नान अवश्य करना उचित है।

३—वस्त्रों को बदलते रहना चाहिए; विशेषतः जो वस्त्र नीचे पहने जाते हैं, और शरीर से प्रतिक्षण सटे रहते हैं, वे स्वेद लग कर अधिक मलिन होते हैं, उन को शीघ्र २ बदलते रहना चाहिए। वस्त्र ऋतु के अनुकूल होने चाहिएँ।

शीत काल में गरम वस्त्रों की आवश्यकता है, जिन से शरीर शीत से सुरक्षित रहे। ग्रीष्म काल में हल्के वस्त्र होने चाहिएँ।

४—हमारे निवास भवन भी स्वच्छ रहने चाहिएँ। यदि उन में कूड़ा करकट वा धूल पड़ी रहेगी तो उन में छोटे २ कीट रहने लगेंगे और उन से हमारे शरीर में रोग हो जावेंगे। शयन-भवन को विशेषतः स्वच्छ रखना उचित है। उसमें वायु आने जाने के लिये वातायन अवश्य होने चाहिएँ।

५—स्वास्थ्य रक्षा के अतिरिक्त एक और कारण से भी हम को स्वच्छ रहने की आवश्यकता है। यदि हम स्वच्छ न रहेंगे, तो मनुष्य हम को अपने समीप बैठाना तक नहीं चाहेंगे और हम से घृणा करने लगेंगे; इस लिये हमारे सब अङ्ग—मुख, दाँत, हाथ, पाँव—और वस्त्र सदैव शुचि रहने आवश्यक हैं।

पाठ ३८

पितृ-भक्ति।

१—एक बार एक नगर में आग लग गई और बहुत से गृह जलने लगे। सब मनुष्य अपनी २ सम्पत्ति के बचाने में लगे हुए थे।

२–उन में से एक गृह में दो भ्राता रहते थे; उन के माता और पिता दोनों अतिवृद्ध थे। उन में अग्नि लगे हुए गृह में से भाग कर अपने प्राण बचाने की सामर्थ्य नहीं थी। चारों ओर अग्नि से प्रज्वालित घर में घिरे हुए वे भय से कांप रहे थे।

३–उन के पुत्र उन दोनों भ्राताओं ने आपस में कहा, "जिन माता पिता से हम उत्पन्न हुए हैं उन से अधिक मूल्यवान् वस्तु हमारे लिये क्या हो सकती है? आओ! और सब सम्पत्ति को छोड़ कर पहले उन की ही रक्षा करें" यह कह कर वे दोनों जलती अग्नि में धँस पड़े और उन में से एक ने अपने पिता को और दूसरे ने माता को अपने कन्धे पर बिठला कर उस अग्नि-मय गृह से निकाल लिया और इस प्रकार उन दोनों की जीवन रक्षा की।

४–उन की सब सम्पत्ति भस्म होगई, पर वे अपना कर्तव्य पालन करके अर्थात् अपने माता पिता की रक्षा करके बड़े प्रसन्न थे। उन के कार्य्य की सब ने प्रशंसा की और उन का यश ग्राम ग्राम में फैल गया।

पाठ ३९

खेती ।

१–भूमि को जोत बोकर उस में विविध प्रकार के अन्न और शाक आदि उत्पन्न करने के व्यवसाय को खेती वा कृषि कहते हैं और खेती करने वाले किसान कहलाते हैं ।

२–अन्न से ही सारे मनुष्य और पशु आदि जीवों की प्राण-यात्रा होती है; इस लिये खेती बड़ा उत्तम व्यवसाय है और उस से किसान अपना और सारे जगत् का पेट भरता है । खेती से धन-लाभ भी बहुत होता है । एक अन्न के दाने से बहुत से दाने उत्पन्न होते हैं और फ़सल आने पर किसान का घर अन्न से भर जाता है । उस समय अन्य व्यवसायी भी किसान की ओर ही आशा लगाये रहते हैं ।

३–खेती से बहुत प्रकार के पौधे उत्पन्न किये जाते हैं । उन में से कई के बीज काम में लाये जाते हैं–**गेहूँ, चना, धान, बाजरा** और **उड़द** आदि खाने के काम में आते हैं; **तिल, लाही** और **सरसों** आदि का तैल निकाला जाता है । ईख से मिठाइयाँ बनती हैं और **कपास** के वस्त्र बनते हैं; ईख और कपास का वर्णन तुम पीछे पढ़ आये हो ।

४–अन्य पौधों के भी विविध भाग हमारे काम में

आते हैं। **गाजर, मूली, शलजम, आलू,** और **कान्दू** आदि की जड़ों को उबाल कर खाते हैं। **मेथी** और **पालक** आदि के पत्तों को पका कर रोटी के साथ खाते हैं। **गोभी** और **कचनाल** के फूल पका कर खाये जाते हैं। ये सब **शाक** कहलाते हैं और रोटी के साथ खाये जाते हैं।

५—कई पौधे रङ्ग के काम में आते हैं। **कुसुम्भ** के फूल से सुर्ख़ रङ्ग और **नील** के पत्तों से नीला रङ्ग बनता है।

६—खेती में जितने पौधे बोये जाते हैं, वे ईश्वर ने अपनी **स्वाभाविक अवस्था** में ही उत्पन्न किये थे अर्थात् वे जङ्गलों में स्वयं उगते थे। मनुष्य अपने परिश्रम और युक्ति से उन को अच्छी भूमि में बोकर और उन की जल-सिञ्चन आदि से रक्षा करके उन में बड़े फल और बीज उत्पन्न करने लगे हैं। क्योंकि यह नियम है कि जिस पौधे के अच्छे २ बीज लेकर उन को अच्छी और पोली भूमि में बोया जाता है और पौधों को जल आदि देकर उस की भली प्रकार रक्षा की जाती है, वह भले प्रकार फलता फूलता है और उस के फल बड़े होते जाते हैं और इस के विपरीत करने से वे छोटे पड़ते जाते हैं।

७—जो आलू आज कल इतने बड़े होते हैं, वे अपनी स्वाभाविक अवस्था में छोटी २ गोलियों की बराबर होते

थे और यदि मनुष्य अब भी उन के उपजाने में परिश्रम न करें, तो वे फिर उसी छोटी अवस्था को पहुँच जावें। इस लिये खेती में स्वाभाविक उगने वाले पौधों को ही विशेष उपायों से बोया जाता है।

८—ये उपाय भूमि को जोत कर और खाद डाल कर पौधों को बढ़ाने वाली बनाना, अच्छे बीजों को बोना, उन से उगे पौधों को जल से सींचना और हानिकारक पशुओं आदि से उन की रक्षा आदि हैं। इन्हीं उपायों अर्थात् भूमि, खाद, बीज, पौधे की रक्षा आदि के ज्ञान को कृषि विद्या कहते हैं। तुम इस विद्या का अधिक वर्णन आगे पढ़ोगे।

९.—खेती से ही हम को भोजन, वस्त्र आदि मिलते हैं। किन्तु आज कल भारतवर्ष में इस व्यवसाय को मूर्ख मनुष्य करते हैं; इस लिए उस से जैसा लाभ होना चाहिए वैसा लाभ नहीं होता। यदि विद्वान् लोग खेती का व्यवसाय करें तो अधिक लाभ हो। योरुप आदि देशों के विद्वानों ने खेती में बड़ी उन्नति की है। हमारे देश वासी भी उन देशों में जाकर उन से कृषि विद्या सीख कर वैसी ही उन्नति कर सकते हैं।

पाठ ४०

वृक्ष के भाग ।

१—वृक्ष का सब से सुन्दर और मनोहर भाग पुष्प होता है । वसन्त ऋतु में पुष्प-बाटिका में भ्रमण कैसा मनोरञ्जक होता है । चित्र विचित्र वर्णों की सुन्दर पुष्पावली आँखों को कैसा आनन्द देती है और वायु में कैसी मीठी सुगन्ध भर देती है । सुगन्ध-मय गुलाब और सुन्दर कमल की शोभा अपार है ।

२—झाड़ियों में जो जङ्गली पुष्प खिलते हैं वा जो हमारे खेतों की शोभा बढ़ाते हैं, उन का दृश्य भी बड़ा मनोहर होता है ।

३—छोटे बालक और बालिका पुष्पों से बड़ा ही प्रेम रखते हैं, किन्तु वे कई प्रकार के फलों जैसे आम, नारङ्गी, अनार, और अमरूद आदि को भी बहुत चाहते हैं ।

४—फल पहले पुष्प वा कलिका के बीच में बहुत छोटे आकार में विद्यमान् रहता है । उन में वह आल्पीन के सिरे से अधिक बड़ा नहीं होता । वृक्ष की जड़ वा मूल के द्वारा पृथिवी में से रस ऊपर को खिँच कर और शाखाओं और पत्रों में होकर, छोटे फलों में पहुँचता रहता है और उस से

ही वे शनैः शनैः बढ़ते और फूलते रहते हैं। इसी प्रकार बढ़ते २ वे पूरे फल बन कर पक जाते हैं और हमारे खाने के योग्य हो जाते हैं।

५– कच्चे फलों के खाने से रोग उत्पन्न होते हैं, इस लिये कच्चे फल कभी न खाने चाहिएँ।

फलों के छिलके कई वर्ण के होते हैं; कतिपय देखने में बड़े सुन्दर होते हैं।

६–सब फलों में एक वा अधिक बीज होते हैं। कई फलों के बीज उन के बीच में होते हैं, जैसे कि आम और लिची में होते हैं। कई लोबिया और उड़द के समान फली में होते हैं। कई बीज अख़रोट और बादाम आदि फल के समान काम में आते हैं; उन के ऊपर दृढ़ छिलका होता है और उन की गिरी निकाल कर खाई जाती है।

७–यदि बीज को भूमि में दबा दिया जावे तो वह उग आता है। भूमि की नमी से बीज फूल जाता है; फूल कर उस के ऊपर का छिलका फट कर खिल जाता है और उस में से एक अंकुर निकल आता है। उस अंकुर में से दो पल्लव निकलते हैं; एक नीचे की ओर बढ़ता है और वृक्ष का मूल बन जाता है, दूसरा ऊपर को बढ़ कर प्रकाण्ड (तना) बन जाता है और ऊँचा होकर उस में

से शाखाएँ निकल कर चारों ओर फैलती हैं। शाखाओं में पत्र, पुष्प और फल लगते हैं।

८—इस प्रकार वृक्ष के मूल, प्रकाण्ड, शाखा, पत्र, पुष्प फल ये छ भाग होते हैं जो भाग भूमि के अन्दर रहता है, वह मूल कहलाता है। मूल में सूत केसे तन्तु होते हैं; वे भूमि में से जल में घुला हुआ वृक्ष का खाद्य ऊपर खींच कर और वृक्ष के सब भागों में पहुँचा कर उस को बढ़ाते हैं। मूल वृक्ष के मुख का काम देता है। खाद्य और जल के बिना वृक्ष जीवित नहीं रह सकता। मूल ही उस को भूमि में खड़ा रखता है।

९—मूल से ऊपर का दृढ़ और प्रायः गोलाकार भाग प्रकाण्ड कहलाता है। प्रकाण्ड के ऊपरले अग्र भाग में शाखा निकलती हैं। मोटी २ शाखा वृक्ष के स्कन्ध कहलाती हैं: प्रकाण्ड और शाखाओं में हो कर ही वृक्ष का पतला खाद्य उस के सारे भागों में पहुँचता है। किन्हीं वृक्षों के मूल से कई प्रकाण्ड निकलते हैं; वे प्रायः कोमल होते हैं और शाखा सी ही प्रतीत होती हैं।

१०—शाखाओं पर पत्र लगते हैं। पत्रों से वृक्षों में वायु पहुँचता है। वृक्ष भी पत्रों में वैसे ही श्वास लेते हैं जैसे हम नासिका द्वारा लेते हैं। वृक्षों में हमारे शरीरों के

सदृश बहुत से अङ्ग होते हैं और उन के शरीरों में भी वे सारी क्रियाएँ होती हैं, जो अन्य जन्तुओं के बढ़ने और उत्पन्न होने में होती हैं; अन्तर केवल इतना ही है कि वे चल फिर और सोच नहीं सकते। वे और जन्तुओं के विपरीत पृथिवी को भेद कर उस में से उगते हैं, इस लिये पृथिवी से उगने वाली सारी वनस्पतियाँ उद्भिज कहलाती हैं।

पाठ ४१

कीलोत्पाटी वानर।

१–कई बालक ऐसे मूर्ख होते हैं कि जिन वस्तुओं को उन को छूना नहीं चाहिए, वे उन को भी निष्प्रयोजन छूआ करते हैं। कई वस्तुएँ बार बार हाथ लगाने से बिगड़ जाती हैं, वा उन के छूने वालों को ही उन से हानि पहुँच जाती है। एक मूर्ख वानर की कथा से यह बात तुम भली प्रकार समझ सकोगे।

२–एक स्थान पर बढ़ी तख्ते चीर रहे थे। जब दो तख्तों को चीरते हैं, तो उन के बीच में आरा जाने के स्थान के लिये एक कील ठोंक देते हैं। इसी प्रकार वे बढ़ी

आधे तख्ते चीर कर और उन में कील लगी छोड़ कर मध्यान्ह को अपने घर भोजन करने चले गये।

३—उन के पीछे वहाँ एक बन्दरों की टोली आई और वे उन तख्तों पर कूद फाँद मचाने लगे। एक मूर्ख वानर उन चिरे तख्तों के वीच में पैर लटका कर बैठ गया और उसने उस कील को, जो दोनों तख्तों को पृथक २ किये हुऐ थी अपने हाथों से ऊपर को खींच लिया।

४—कील को ऊपर खींचते ही दोनों तख्ते आपस में मिल गये और उनके बीच में लटके हुए उस वानर के दोनों पैर उन में ज़ोर से भिच कर कुचले गये। वह बहुतेरा चिल्लाया, किन्तु उसके पैरों को शीघ्र आ कर कोई भी न बचा सका और उसको अपने किये का फल भोगना पड़ा।

५—इस कथा से तुम को भी शिक्षा लेनी चाहिये कि बिना जानी हुई किसी कला वा किसी भी वस्तु को स्पर्श न करो; अन्यथा तुम्हारी भी उस वानर वाली दशा होगी, अर्थात् तुम्हारे शरीर को उस से हानि पहुँच जावेगी; क्योंकि तुम उस को खोलना बन्द करना वा उसको उपयोग में लाना नहीं जानते।

६—यदि तुम उसका उपयोग भी जानते हो तो भी तुम्हारे बार २ स्पर्श करने से वह वस्तु बिगड़ जावेगी और तुम उसके बिगाड़ने के अपराधी बनोगे ; इस लिये किसी भी वस्तु को निष्प्रयोजन कभी मत स्पर्श करो ।

पाठ ४२

ग्राम और नगर ।

१– तुम व्यवसाय के पाठ में पीछे पढ़ आये हो कि मनुष्य के विविध प्रकार के व्यवसाय करने से संसार का काम चलता है । एक व्यवसायी को दूसरे व्यवसायी की आवश्यकता रहती है; जैसे एक किसान को खेती करने के लिये **बढ़ी, लोहार, चमार, और कुम्हार, आदि कई** व्यवसायियों की आवश्यकता पड़ती है

२-अब यदि ये व्यवसायी एक दूसरे से दूर दूर स्थानों पर निवास करें तो मनुष्यों को अपना काम चलाने में बड़ी कठिनता पड़े । जब किसी व्यवसायी की आवश्यकता हुआ करे तो दूर स्थान पर उस के पास जाना पड़ा करे और इस प्रकार दूर आने जाने में बहुतसा समय और परिश्रम व्यर्थ नष्ट हुआ करे । इस आपत्ति से बचने के लिये अनेक प्रकार के

व्यवसायी कहीं एक स्थान पर अपने घर बना कर अपने कुटुम्ब सहित रहने लगते हैं। और उनका यह एकत्र निवासस्थान ग्राम कहलाता है।

३-इस प्रकार पृथ्वी पर पृथक् २ बहुत से ग्राम बस गये हैं और एक दूसरे का अन्तर जानने के लिये उनके पृथक् नाम रख लिये गये हैं जैसे श्यामपुर, काङ्गड़ी और जगजीतपुर आदि। ग्रामों से बाहर वा एक ग्राम से दूसरे ग्राम तक जो भूमि पड़ी रहती है, उसको किसान जोत बो कर उसमें खेती करते हैं और अन्न उत्पन्न करके अपना और अन्य ग्राम वालों का पेट भरते हैं। ग्रामों में अधिकतर किसान और मज़दूर ही बसते हैं।

४-एक ग्राम से दूसरे ग्राम को आने जाने के लिये मार्ग बने रहते हैं। जो मार्ग मिट्टी और कङ्कर कूट कर चौड़े और ऊँचे बनाये जाते हैं वे **सड़क** वा **राज-पथ** कहलाते हैं। यदि सड़क के बीच में कोई नदी आपड़ती है, तो उस को, इस प्रकार पाट कर, उस के ऊपर से सड़क ले जाते हैं, कि नदी पटे हुए स्थान के नीचे से बहती रहती है और ऊपर सड़क चलती रहती है यह स्थान सेतु वा पुल कहलाता है।

५-जिस ग्राम में पाँच सहस्र से अधिक मनुष्य निवास

करते हैं वह **क़सबा** कहलाता है । क़सबे में विविध प्रकार की वस्तु बेचने के लिये मनुष्य आमने सामने सीधी पंक्तियों में दूकानें बना लेते हैं किसी दूकान पर **मिष्टान्न**, किसी पर कपड़ा, किसी पर अन्न और किसी पर पात्र बिकते हैं; इन दूकान वालों को क्रमशः **हलवाई**, **बज़ाज़**, **बणिक्** और **कसेरा** कहते हैं । सब दूकानों का समुदाय **बाज़ार** कहलाता है । क़सबे में बाज़ार के अतिरिक्त **डाकघर**, **पाठशाला** और हिन्दुओं के **शिवालय** और मुसल्मानों की **मसजिदें** होती हैं कनखल हरद्वार आदि कसबे ही कहलाते हैं ।

६—जहाँ क़सबे से भी अधिक जन-समुदाय रहता है, वह स्थान **नगर** वा **शहर** कहलाता है । नगरों में बड़े २ बाज़ार होते हैं वहाँ विविध कला कौशल के कार्य्यालय होते हैं । कहीं कपड़ा बुना जाता है; कहीं कागज़ बनता है और कहीं आटा पीसा जाता है । नगरों में सब वस्तुएँ मोल मिल सकती हैं । ग्राम वाले अन्न और घृत दुग्ध आदि जो उन के ख़र्च से बचता है, नगर में लेजाकर बेच आते हैं और वहाँ से वस्त्र आदि अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ क्रय कर लाते हैं ।

७—नगरों में अधिक समुदाय के मल-मूत्र के त्याग और

श्वास लेने से वहाँ का वायु गन्दा हो जाता है। अधिक समुदाय में बुरे भले सब प्रकार के मनुष्य रहते हैं। ग्राम का जल वायु शुद्ध रहता है और वहाँ भीड़ कम होने के कारण एकान्त भी रहता है; इस लिये ग्राम का निवास अच्छा होता है।

पाठ ४३

शहर और गाँव ॥

[१]

शहर गाँव से बोला भाई।
मुझ को तुझ पर मिली बड़ाई ॥
मुझ से सब को बहुत नफ़ा है।
तुझ से तो हर शख़्श ख़फ़ा है ॥

[२]

मैं आराम बहुत देता हूँ।
काम बहुत से मैं करता हूँ ॥
अच्छे अच्छे माल बना कर।
रख देता हूँ सजा सजा कर ॥

[३]

मैं पूरी, पकवान मिठाई ।
देता हूँ सब बनी बनाई ॥
बिसकुट, रोटी, नानखताई ।
मक्खन, रबड़ी दूध, मलाई ॥

[४]

और बहुत से उमदा खाने ।
सब को देता हूँ मन माने ॥
रात बिरात किसी दम आवे ।
थका मुसाफ़िर खाना पावे ॥

[५]

टिक रहने के बहुत ठिकाने ।
अच्छे बने मुसाफ़िर-ख़ाने ॥
जो कुछ चाहें सब मिलता है ।
मुरझाया दिल भी खिलता है ॥

[६]

थान, रेशमी, ऊनी, सूती ।
अच्छी भड़क बड़ी मज़बूती ॥
ख़ासा, मलमल, नैनू, खद्दा ।
मख़मल, साटन, गोटा, पट्ठा ॥

[७]

लोई, धुस्सा, शाल, दुशाला ।
मिलै एक से एक निराला ॥
मोती, मूँगा, चाँदी, सोना ।
ज़ेवर बरतन और खिलौना ॥

[८]

तेरा भी हूँ बहुत सहारा ।
मुझ से तेरा बड़ा गुज़ारा ॥
लेकर पैदावारी तेरी ।
देता हूँ दौलत बहुतेरी ॥

[९]

गाँव हँसा सुन कर ये बातें ।
कहा, जानता हूँ सब घातें ॥
जो अहसान जताते हो तुम ।
बातें बड़ी बनाते हो तुम ॥

[१]

अपने गुण सब गाते हो तुम ।
सब्ज़ बाग़ दिखलाते हो तुम ॥
सब को ख़ूब लुभाते हो तुम ।
खोटी चाल चलाते हो तुम ॥

[११]

ऐसी चाट लगाते हो तुम ।
ऐसे ठाठ बनाते हो तुम ॥
पहले जी बहलाते हो तुम ।
पीछे ख़ूब रुलाते हो तुम ॥

[१२]

जो मीठी बातों में आवे ।
पीछे सिर धुन कर पछतावे ॥
मैं अपने घर ही में ख़ुश था ।
तुम ने मुझ को किया निकम्मा ॥

[१३]

अब तुम मेरी सुनो कहानी ।
हुई बड़ी मुझ से नादानी ॥
जो मैं पास तुम्हारे आया ।
अपना सारा भरम गँवाया ॥

[१४]

सारे दुख, तकलीफ़ें सारी ।
मिलीं मुझे तुम से कर यारी ॥
पहले दुनियाँ में मैं ही था ।
कोई दुख उस वक़्त नहीं था ॥

[१५]

खुली, साफ़ बेरोग हवा में ।
जो गुण है, वह नहीं दवा में ॥
पहले तुम थे कहाँ ? बताओ ।
कौन काम था रुका ? जताओ ॥

[१६]

किस को क्या तकलीफ़ रही थी ।
किस को क्या उस वक़्त कमी थी ॥
खुली हवा में रहते थे सब ।
खाते, पीते, सोते थे सब ॥

[१७]

सब चंगे थे; रोग नहीं था ।
जूड़ी, प्लेग, बुख़ार नहीं था ॥
सादा खाना सब खाते थे ।
पच जाता था; सुख पाते थे ॥

[१८]

दूध, दही की कमी नहीं थी ।
गाय भैंस की क्या गिनती थी ॥
तुमने जो अब चाट लगाई ।
उस ने बीमारी फैलाई ॥

[१९]

तब वैदों की चाह नहीं थी ।
रोग न थे परवाह नहीं थी ॥
जड़, फल, फूल राह में चुन कर ।
भर लेते थे पेट मुसाफ़िर ॥

[२०]

अब भी मेरा हाल वही है ।
सीधी सादी चाल वही है ॥
तुम से क्या आराम किसी को ।
दुख ही दुख है सब के जी को ॥

[२१]

जो सुख मैं सब को देता हूँ ।
उस का बदला कब लेता हूँ ॥
मुझ में है आराम अनूठा ।
मुझ से ख़फ़ा रहे वह झूठा ॥

[२२]

सब सामान जो तू रखता है ।
मेरा पैदा किया हुआ है ॥
मेरी ही मेहनत का फल है ।
जिस से तुझ को इतना बल है ॥

[२३]

ग़ौर करो तो मुझ को जानो ।
दिल में सोचो तो पहचानो ॥
अपने मुँह से सभी बड़े हैं ।
तुम से मिल लाखों बिगड़े हैं ।

{ पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी कृत,
सरस्वती पत्रिका, प्रयाग से । }

॥ इति ॥

गुरुकुल ग्रन्थावलिः ।

१ अष्टाध्यायी, तत्त्वप्रकाशिकया सहिता (पूर्वार्द्धम्)

२ अष्टाध्यायी, तत्त्वप्रकाशिकया सहिता (उत्तरार्द्धम्) १

३ नामिकः...

४ सन्धिविषयः...

५ अष्टाध्यायी (मूलमात्रा) ....

६ संस्कृत-प्रथम पुस्तकम्..

७ संस्कृताङ्कुरः..

८ आर्य्यसूक्तिसुधा...

९. काव्यलतिका (अत्र किरातार्जुनीयात् माघाच्च छात्रोपयोगिनः श्लोकाः संगृहीताः, मल्लिनाथटीका सहिताः ।

१० आख्यातिकः..

११ धातुपाठः..

Ideal of Education: Ancient and Moden by Rama Dara B. A...

उपर्युक्त पुस्तकें इस पते से मिलेंगीः-

मुख्याधिष्ठाता

गुरुकुल (काङ्गड़ी) हरिद्वार